अन्य नाटक

२॥)
१।)
१)
॥=)
॥=)
॥)
।)

मिलने का पता—

रक्षीचनर

प्रिय सुहृद्वर

राय कृष्णदास

को

प्रीति-उपहार

मौर्य्य वंश

प्राचीन आर्य्य नृपतिगण का साम्राज्य उस समय नहीं रह गया था, चन्द्र और सूर्य्यवंश की राजधानियाँ अयोध्या और हस्तिनापुर विकृत रूप में भारत के वक्षस्थल पर अपने साधारण अस्तित्व का परिचय दे रही थीं। नागवंशी तथा अन्य प्रचण्ड बर्बर जातियों की लगातार चढ़ाइयों से पवित्र सप्तसिंधु प्रदेश में आर्य्यों के सामगान का पवित्र स्वर मंद हो गया था। पाञ्चालों की लीला-भूमि तथा पंजाब मिश्रित जातियों से भर गया था। जाति, समाज, धर्म्म और साम्राज्य सबमें एक विचित्र मिश्रण और परिवर्तन-सा हो रहा था। कहीं आभीर और कहीं ब्राह्मण राजा बन बैठे थे। यह सब भारत-भूमि की भावी दुर्दशा की सूचना क्यों थी? इसका उत्तर केवल यही आपको मिलेगा, कि—धर्म्म-सम्बन्धी महा परिवर्तन होनेवाला था। वह बुद्ध से प्रचारित होनेवाले बौद्ध धर्म्म की ओर भारतीय आर्य्य लोगों का झुकाव था, जिसके लिये वे लोग प्रस्तुत हो रहे थे।

उस धर्म्मबीज को ग्रहण करने के लिये कपिल, कणाद आदि ने आर्य्यों का हृदयक्षेत्र पहले ही से उर्वर कर दिया था, किन्तु वह मत सर्वसाधारण में अभी नहीं फैला था। वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता से उपनिषद् तथा सांख्य आदि शास्त्र आर्य्य लोगों को सरल और सुगम प्रतीत होने लगे थे। ऐसे ही समय पार्श्वनाथ ने एक जीव-दयामय धर्म प्रचारित किया और वह धर्म्म बिना किसी शास्त्र विशेष के, वेद तथा प्रमाण की उपेक्षा करते हुए फैलकर शीघ्रता के साथ सर्वसाधारण से सम्मान पाने लगा। आर्य्यों की राजसूय और अश्वमेध आदि शक्ति

बढ़ानेवाली क्रियायें शून्य स्थान में ध्यान और चिन्तन के रूप में परिवर्तित हो गईं। अहिंसा का प्रचार हुआ। इससे भारत की उत्तर सीमा में स्थित जातियों को भारत में आकर उपनिवेश स्थापित करने का उत्साह हुआ। दार्शनिक मत के प्रबल प्रचार से भारत में धर्म्म, समाज और साम्राज्य सबमें विचित्र और अनिवार्य्य परिवर्तन हो रहा था। बुद्धदेव के दो-तीन शताब्दी पहले ही दार्शनिक मतों ने विशेष बन्धनों को जो उस समय के आर्य्यों को उद्विग्न कर रहे थे तोड़ना आरम्भ किया। उस समय ब्राह्मण वल्कलधारी होकर काननों में रहना ही अच्छा न समझते वरन् वे भी राज्यलोलुप होकर स्वतन्त्र छोटे-छोटे राज्यों के अधिकारी बन बैठे। क्षत्रियगण राजदण्ड को बहुत भारी तथा अस्त्र शस्त्रों को हिंसक समझ कर उनकी जगह जप यज्ञ हाथ में रखने लगे। वैश्य लोग भी व्यापार आदि में मनोयोग न देकर धर्म्माचार्य्य की पदवी को भार समझने लगे। और तो क्या भारत के प्राचीन दास भी अन्य देशों से आई हुई जातियों के साथ मिलकर दस्युवृत्ति करने लगे।

वैदिक धर्म्म पर क्रमशः बहुत से आघात हुए, जिनसे वह जर्जर हो गया। कहा जाता है कि उस समय धर्म्म की रक्षा करने को तत्पर ब्राह्मणों ने अर्बुदगिरि पर एक महान् यज्ञ करना आरम्भ किया और उस यज्ञ का प्रधान उद्देश्य वर्णाश्रम धर्म्म तथा वेद की रक्षा करना था। चारों ओर से दल-के-दल क्षत्रियगण—जिनका युद्ध ही आमोद था—जुटने लगे और वे ब्राह्मण धर्म्म को मानकर अपने आचार्य्यों को पूर्ववत् सम्मानित करने लगे। जिन जातियों को अपने कुल की क्रमागत वंश मर्य्यादा भूल गई थी वे तपस्वी और पवित्र ब्राह्मणों के यज्ञ से संस्कृत होकर चार जातियों में विभाजित की गईं। इनका नाम अग्निकुल हुआ। सम्भवतः

इसी समय में तक्षक वा नागवंशी भी क्षत्रियों की एक श्रेणी में गिने जाने लगे।

यह धर्म्मक्रांति भारतवर्ष में उस समय हुई थी जब जैनतीर्थङ्कर पार्श्वनाथ हुए, जिनका समय ईसा से ७०० वर्ष पहले माना जाता है। जैन लोगों के मत से भी इस समय में विशेष अन्तर नहीं है। ईसा के सात सौ वर्ष पूर्व यह बड़ी घटना भारतवर्ष में हुई। जिसने भारतवर्ष में राजपूत जाति बनाने में बड़ी सहायता दी और समय-समय पर उन्हीं राजपूत क्षत्रियों ने बड़े-बड़े कार्य्य किये। उन राजपुत्रों की चार जातियों में पहली प्रमार जाति थी और जहाँ तक इतिहास पता देता है—उन लोगों ने भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फैलकर नवीन जन-पद और अक्षय कीर्त्ति उपार्जित की। धीरे-धीरे भारत के श्रेष्ठ राजन्यवर्गों में इनकी गणना होने लगी। यद्यपि इस कुल की भिन्न - भिन्न पैंतीस शाखायें हैं, पर सबमें प्रधान और लोक-विश्रुत मौर्य्य नाम की शाखा हुई। भारत का शृङ्खलाबद्ध इतिहास नहीं है, पर बौद्धों के बहुत से शासन-सम्बन्धी लेख और उनकी धर्म्मपुस्तकों से हमें बहुत सहायता मिलेगी, क्योंकि उस धर्म्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचानेवाला उसी मौर्य्यवंश का सम्राट् अशोक हुआ है। बौद्धों के विवरण से ज्ञात होता है, कि शैशुनाक वंशी महानन्द के संकर पुत्र महापद्म के पुत्र धननन्द से मगध का सिंहासन लेनेवाला चन्द्रगुप्त मोरियों के नगर का राजकुमार था। यह मोरियों का नगर पिप्पली कानन था, और पिप्पली कानन के मौर्य्य नृपति लोग भी बुद्ध के शरीर—भस्म के भाग लेनेवालों में एक थे।

मौर्य्य लोगों की उस समय भारत में कोई दूसरी राजधानी न थी। यद्यपि इस बात का पता नहीं चलता, कि इस वंश के आदि पुरुषों में से

जिसने पिप्पली कानन में मौर्यों की पहली राजधानी स्थापित की था यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ईसा से ५०० वर्ष या इससे पहले यह राजधानी स्थापित हुई और मौर्य जाति इतिहास-प्रसिद्ध कोई ऐसा काम तब तक नहीं कर सका जब तक कि प्रतापी चन्द्रगुप्त उसमें न उत्पन्न हुआ। इसने मौर्य शब्द को जो अब तक भारतवर्ष के एक कोने में पड़ा हुआ अपना जीवन अपरिचित रूप से बिता रहा था केवल भारत ही नहीं वरन् ग्रीक आदि समस्त देशों में परिचित करा दिया। ग्रीक इतिहास-लेखकों ने अपनी अमगुण लेखनी से इस चन्द्रगुप्त के बारे में कुछ तुच्छ बातें लिख दी हैं जो कि बिलकुल असम्बद्ध ही नहीं वरन् झूठी हैं। जैसे—चन्द्रगुप्त नाइन के पेट से पैदा हुआ, महानन्दिन् का लड़का था।* पर यह बात पारस ने महापद्म और धननन्द आदि के लिये कही है * और वही पीछे से चन्द्रगुप्त के लिये भ्रम से यूनानी ग्रंथकारों ने लिख दी है। ग्रीक इतिहास लेखक Plutarch लिखता है कि 'चंद्रगुप्त मगध सिंहासन पर आरोहण करने के बाद कहता था कि सिकन्दर महापद्म को अवश्य जीत लेता क्योंकि यह नीचजन्मा दास।

---

*Alexander who did not at first believe this inquired from King Porus whether this account of the power of Zandrames was true and he was told by Porus that it was true but that the king was but of mean and obscure extraction accounted to be a barber's son that the queen however had fallen in love with the barber had murdered her husband and that the kingdom had thus devolved upon Zandrames

Diodorus Siculus
in History of A. S. Literature

कारण जन-समाज में अपमानित तथा घृणित था। जिवानियस आदि लेखकों ने तो यहाँ तक भ्रम डाला है, कि पोरस ही नापित से पैदा था। पोरस ने ही यह बात कही थी, इससे वही नापित-पुत्र समझा जाने लगे, तो क्या आश्चर्य है, कि तक्षशिला में जब चन्द्रगुप्त ने यही बात कही थी, तो वही नापित पुत्र समझा जाने लगा हो। ग्रीकों के भ्रम से ही यह कलङ्क उसे लगाया गया है।

एक बात और भी उस समय तक निर्धारित नहीं हुई थी, कि Sandrokottus और Xandramus भिन्न-भिन्न दो व्यक्तियों का या एक का ही नाम है। यह तो H. H Wilson ने विष्णुपुराण आदि के सम्पादन समयमें सन्ड्रोकोटस और चन्द्रगुप्त को एक में मिलाया। यूनानी लेखकों ने लिखा है, कि Xandrames ने बहुत सेना लेकर सिकन्दर से मुकाबिला किया। उन्होंने उस प्राच्य देश के राजा Xandrames को जो नन्द था भूल से चन्द्रगुप्त समझ लिया—जो कि तक्षशिला में एक बार सिकन्दर से मिला था और बिगड़कर लौट आया था। चन्द्रगुप्त से सिकन्दर से भेंट हुई थी इसलिये भ्रम से वे लोग SandraKottas और Xandrames को एक समझकर नन्द की कथा को चन्द्रगुप्त के पीछे जोड़ने लगे।

चन्द्रगुप्त ने पिप्पली कानन के कोने से निकलकर पाटलीपुत्र पर अधिकार किया। मेगास्थनीज ने इस नगर का वर्णन किया है और इसे पारस की राजधानी से भी बढ़कर बतलाया है। अस्तु, मौर्यों की दूसरी राजधानी पाटलीपुत्र हुई।

पुराणों के देखने से ज्ञात होता है, कि चन्द्रगुप्त के बाद नौ राजा उसके वंश में मगध के सिंहासन पर बैठे। उनमें अन्तिम राजा वृहद्रथ

हुआ, जिसे मारकर पुष्यमित्र—जो शुङ्गवंश का था—मगध के सिंहासन पर बैठा, किन्तु चीनी यात्री हुएनसांग जो हर्षवर्धन के समय में आया था, लिखता है— मगध का अन्तिम अशोकवंशी पूर्णवर्म्मा हुआ, जिसके समय में शशांकगुप्त ने बोधिद्रुम का विनष्ट किया था और उसी पूर्णवर्म्मा ने बहुत से गौ के दुग्ध से उस उन्मूलित बोधिद्रुम को सींचा, जिससे वह शीघ्र ही फिर बढ़ गया।" यह बात प्रायः सब मानते हैं कि मौर्य्यवंश के नौ राजाओं ने मगध के राज्यासन पर बैठकर उसके अधीन के समस्त भूभाग पर शासन किया। जब मगध के सिंहासन पर से मौर्य्यवंशियों का अधिकार जाता रहा तब इन लोगों ने एक प्रादेशिक राजधानी को अपनी राजधानी बनाया। प्रबल प्रतापी चन्द्रगुप्त का राज्य चार प्रादेशिक शासकों से शासित होता था। अवन्ति, स्वर्णगिरि टोसाली और तक्षशिला में अशोक के चार सूबेदार रहा करते थे। इनमें अवन्ती के सूबेदार प्रायः राजवंश के होते थे। स्वयं अशोक उज्जैन का सूबेदार रह चुका था। संभव है कि मगध का शासन डावाँडोल देख कर मगध के आठवें मौर्य्य नृपति सोमशर्म्मा के किसी राजकुमार ने जो कि अवन्ती का प्रादेशिक शासक रहा हो अवन्ती को प्रधान राजनगर बना लिया हो। क्योंकि उसकी एक ही पीढ़ी के बाद मगध के सिंहासन पर शुङ्गवंशियों का अधिकार हो गया। यह घटना संभवतः १७५ ई० पूर्व हुई होगी क्योंकि १८३ में सोमशर्म्मा मगध का राजा हुआ। भट्टियों के ग्रंथों में लिखा है कि मौर्य्यकुल के मूलवंश से उत्पन्न हुए परमार नृपतिगण ही उस समय भारत के चक्रवर्ती राजा थे, और वे लोग कभी कभी उज्जयिनी में ही अपनी राजधानी स्थापित करते थे।

टाडने अपने राजस्थान में लिखा है कि जिस चन्द्रगुप्त की सहायता

प्रतिष्ठा का वर्णन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है उस चंद्रगुप्त का जन्म पवाँर कुल की मौर्य्यनाम की शाखा में हुआ है। संभव है कि विक्रम के सौ या कुछ वर्ष पहले जब मौर्य्यों की राजधानी पाटलीपुत्र से हटी तब इन लोगों ने उज्जयिनी को प्रधानता दी और वहीं पर अपने एक प्रादेशिक शासक की जगह राजा की तरह रहने लगे।

राजस्थान में पवाँर कुल के मौर्य्य नृपतिगणने इतिहास में प्रसिद्ध बड़े बड़े कार्य्य किये, किन्तु ईसा की पहली शताब्दी से लेकर ५ वीं शताब्दी तक प्रायः उन्हें गुप्तवंशी तथा अपर जातियों से युद्ध करना पड़ा। भट्टियों ने लिखा है कि उस समय मौर्य्यकुल के प्रमार लोग कभी उज्जयिनी को और कभी राजस्थान की धारा को अपनी राजधानी बनाते थे।

इस दीर्घकालव्यापिनी अस्थिरता में मौर्य्य लोग जिस तरह अपनी प्रभुता बनाये रहे उस तरह किसी वीर और परिश्रमी जाति के सिवा दूसरा नहीं कर सकता। इसी जाति के महेश्वर नामक राजा ने विक्रम के ६०० वर्ष बाद कार्तवीर्य्यार्जुन की प्राचीन महिष्मती को जो नर्मदा के तट पर थी फिर से बसाया और उसका नाम महेश्वर रखा, उन्हीं का पौत्र दूसरा भोज हुआ, चित्राङ्ग मौर्य्य ने भी थोड़े ही समय के अन्तर में चित्रकूट (चितौर) का पवित्र दुर्ग बनवाया, जो भारत के स्मारक चिह्नों में एक अपूर्व वस्तु है।

गुप्तवंशियों ने जब अवन्ती मौर्य्य लोगों से ले ली, इसके बाद वीर मौर्य्यों के उद्योग से बहुतेरी नगरी बसाई गई और कितनी ही उन लोगोंने दूसरे राजाओं से ले ली। अर्बुदगिरि के प्राचीन भूभाग पर उन्हीं का

हुआ, जिसे मारकर पुष्यमित्र—जो शुङ्गवंश का था—मगध के सिंहासन पर बैठा किन्तु चीनी यात्री हुएनत्सांग जो हर्षवर्धन के समय में आया था, लिखता है— मगध का अन्तिम अशोकवंशी पूर्णवर्मा हुआ, जिसके समय में शशांकगुप्त ने बोधिद्रुम का विनष्ट किया था और इसी पूर्णवर्मा ने बहुत से गौ के दुग्ध से इस उन्मूलित बोधिद्रुम को सींचा, जिससे वह शीघ्र ही फिर बढ़ गया।" यह बात प्राय सब मानते हैं कि मौर्य्यवंश के नौ राजाओं ने मगध के राजासन पर बैठकर उसके अधीन के समस्त भूभाग पर शासन किया। जब मगध के सिंहासन पर से मौर्य्यवंशियों का अधिकार जाता रहा तब इन लोगों ने एक प्रादेशिक राजधानी को अपनी राजधानी बनाया। प्रबल प्रतापी चन्द्रगुप्त का राज्य चार प्रादेशिक शासकों से शासित होता था। अवन्ति, स्वर्णगिरि टोसाली और तक्षशिला में अशोक के चार सूबेदार रहा करते थे। इनमें अवन्ती के सूबेदार प्रायः राजवंश के होते थे। स्वयं अशोक उज्जैन का सूबेदार रह चुका था। संभव है कि मगध का शासन डावाँडोल देख कर मगध के अन्तिम मौर्य नृपति सोमशर्म्मा के किसी राजकुमार ने जो कि अवन्ती का प्रादेशिक शासक रहा हो अवन्ती को प्रधान राजनगर बना लिया हो। क्योंकि उसकी एक ही पीढ़ी के बाद मगध के सिंहासन पर शुङ्गवंशियों का अधिकार हो गया। यह घटना संभवतः १७५ ई० पूव हुई होगी क्योंकि १८३ में सोमशर्म्मा मगध का राजा हुआ। भट्टियों के ग्रंथों में लिखा है कि मौर्य्यकुल के मूलपुरुष से उत्पन्न हुए परमार नृपतिगण ही उस समय भारत के चक्रवर्ती राजा थे और वे लोग कभी कभी उज्जयिनी में ही अपनी राजधानी स्थापित करते थे।

टाडने अपने राजस्थान में लिखा है कि जिस चन्द्रगुप्त की महान्

प्रतिष्ठा का वर्णन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है उस चंद्रगुप्त का जन्म पवाँर कुल की मौर्य्यनाम की शाखा में हुआ है। संभव है कि विक्रम के सौ या कुछ वर्ष पहले जब मौर्य्यों की राजधानी पाटलीपुत्र से हटी तब इन लोगों ने उज्जयिनी को प्रधानता दी और वहीं पर अपने एक प्रादेशिक शासक की जगह राजा की तरह रहने लगे।

राजस्थान में पवाँर कुल के मौर्य्य नृपतिगणने इतिहास में प्रसिद्ध बड़े बड़े कार्य्य किये, किन्तु ईसा की पहली शताब्दी से लेकर ५ वीं शताब्दी तक प्रायः उन्हें गुप्तवंशी तथा अपर जातियों से युद्ध करना पड़ा। भट्टियों ने लिखा है कि उस समय मौर्य्यकुल के प्रमार लोग कभी उज्जयिनी को और कभी राजस्थान की धारा को अपनी राजधानी बनाते थे।

इस दीर्घकालव्यापिनी अस्थिरता में मौर्य्य लोग जिस तरह अपनी प्रभुता बनाये रहे उस तरह किसी वीर और परिश्रमी जाति के सिवा दूसरा नहीं कर सकता। इसी जाति के महेश्वर नामक राजा ने विक्रम के ६०० वर्ष बाद कार्तवीर्य्यार्जुन की प्राचीन महिष्मती को जो नर्मदा के तट पर थी फिर से बसाया और उसका नाम महेश्वर रखा, उन्हीं का पौत्र दूसरा भोज हुआ, चित्राङ्ग मौर्य्य ने भी थोड़े ही समय के अन्तर में चित्रकूट (चित्तौर) का पवित्र दुर्ग बनवाया, जो भारत के स्मारक चिह्नों में एक अपूर्व वस्तु है।

गुप्तवंशियों ने जब अवन्ती मौर्य्य लोगों से ले ली, उसके बाद वीर मौर्य्यों के उद्योग से बहुतेरी नगरी बसाई गई और कितनी ही उन लोगोंने दूसरे राजाओं से ले ली। अर्बुदगिरि के प्राचीन भूभाग पर उन्हीं का

अधिकार था। उस समय राजस्थान के सब अच्छे-अच्छे नगर प्रायः मौर्य्यराजगण के अधिकार में थे। विक्रमीय संवत् ७८० तक मौर्य्यों की प्रतिष्ठा राजस्थान में थी और इस अंतिम प्रतिष्ठा को तो भारतवासी कभी न भूलेंगे जिसका चित्तौरपति मालव नरनाथ मानसिंह ने खलीफा वलीद का राजस्थान से विताड़ित करके प्राप्त की थी।

मानमौर्य्य के बनवाये हुए मानसरोवर में एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि— 'महेश्वर को भोज नाम का पुत्र हुआ था जो धारा और मालव का अधीश्वर था उसीसे मानमौर्य्य हुए। इतिहास में ७८४ संवत् में बाप्पारावल का चित्तौर अधिकार करना लिखा है तो इसमें संदेह नहीं रह जाता कि यहां मानमौर्य्य बाप्पारावल के द्वारा पदच्युत हुआ।

महाराज मान प्रसिद्ध बाप्पादित्य के मातुल थे। बाप्पादित्य ने नागेन्द्र से भागकर मानमौर्य्य के यहाँ आश्रय लिया उनके यहाँ सामन्त रूप से रहने लगे। धीरे धीरे उनका अधिकार सब सामन्तों से बढ़ा तब सब सामन्त उनसे डाह करने लगे। किन्तु बाप्पादित्य की सहायता से मानमौर्य्य ने यवनों को फिर भी पराजित किया। पर उन्हीं बाप्पादित्य की दुधारी तलवार मानमौर्य्य के लिये कालभुजंगिनी और मौर्य्य कुल के लिये तो मानो प्रलय समुद्र की एक बड़ी लहर हुई। मान बाप्पादित्य के हाथ से मारे गये और राजस्थान में मौर्य्य कुल का अब कोई राजा न रहा। यह घटना विक्रमीय संवत् ७८४ की है।

कोटा के कण्वाश्रम के शिवमंदिर में एक शिलालेख संवत् ७९५ का पाया गया है। उससे मालूम होता है कि आठवीं शताब्दी के अंत तक राजपूताना और मालवा पर मौर्य्य नृपति का अधिकार रहा।

प्रसिद्ध मालवेश भोज भी प्रमारवंश का था जो १०३५ में हुआ। इस प्रकार प्रमार और मौर्य्यकुल पिछले काल के विवरणों से एक में मिलाये जाते हैं। इस बात की शंका हो सकती है कि मौर्य्यकुल की मूल शाखा प्रमार का नाम प्राचीन बौद्धों की पुस्तकों में क्यों नहीं मिलता। परंतु यह देखा जाता है कि जब एक विशाल जाति से एक छोटा-सा कुल अलग होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता बना लेता है तब प्रायः वह अपनी प्राचीन संज्ञा को छोड़कर नवीन नाम को अधिक प्रधानता देता है। जैसे इक्ष्वाकु वंशी होने पर भी बुद्ध, शाक्य नाम से पुकारे गये और, जब शिलालेखों में मानमौर्य्य और प्रमार भोज को हम एक ही वंश में होने का प्रमाण पाते हैं, तब कोई संदेह नहीं रह जाता। हो सकता है, मौर्य्यों के बौद्धयुग के बाद जब इस शाखा का हिन्दूधर्म की ओर अधिक झुकाव हुआ हो तो प्रमार नाम फिर से लिया जाने लगा हो, क्योंकि मौर्य्य लोग बौद्धप्रेम के कारण अधिक कुख्यात हो चुके थे। बौद्ध विद्वेष के कारण अशोक के वंश को अक्षत्रिय तथा नीचकुल का प्रमाणित करने के लिये मध्यकाल में अधिक उत्सुकता देखी जाती है किन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रसिद्ध प्रमारकुल और मौर्य्यवंश परस्पर सम्बद्ध है।

इस प्रकार अज्ञात पिप्पली कानन के एक कोने से निकल कर ईसा से ३२१ वर्ष पहले से ७८४ वर्ष बाद तक मौर्य्य लोगों ने पाटलीपुत्र, उज्जैन, धारा, महेश्वर, चित्तौर (चित्रकूट) और अर्बुदगिरि आदि में अलग अलग अपनी राजधानियाँ स्थापित कीं और लगभग १०५० वर्ष तक वे लोग मौर्य्य नरपति कहकर पुकारे गये।

पिप्पली कानन के मौर्य्य

मौर्यकुल का सबसे प्राचीन स्थान पिप्पली कानन था। चन्द्रगुप्त के आदि पुरुष मौर्य इसी स्थानके अधिपति थे और यह राजवंश गौतमबुद्ध के समय में प्रतिष्ठित गिना जाता था, क्योंकि बौद्धों ने महात्मा बुद्ध के शरीर भस्म का एक भाग पाने वालों में पिप्पली कानन के मौर्यों का उल्लेख किया है। पिप्पली कानन बस्ती जिलेमें नैपाल की सीमा पर है। वहाँ टूह और स्तूप हैं, इसे अब पिपरहियाकोट कहते हैं। फाहियान ने स्तूप आदि देखकर भ्रमवश इसी को पहले कपिलवस्तु समझा था। मि पीपीने इस स्थान का पहले खुदवाया और बुद्ध देव की धातु तथा और जो वस्तु मिली उन्हें गवनमेन्ट को अर्पित किया था तथा धातु का प्रधान अंश सरकार ने स्याम के राजा को दिया।

इसी पिप्पली कानन में मौर्यलोग अपना छोटा सा राज्य स्वतंत्रता से संचालित करते थे। और ये क्षत्रिय थे जैसा कि महावंश के इन अव तरण से सिद्ध होता है मोरियान खत्तियन वसजातं सिरीधरं चन्द्गुत्त सिपंजातं चाणक्को ब्रह्मणोततो" हिन्दू नाटककार विशाखदत्तने चन्द्रगुप्त को प्रायः वृषल कहकर सम्बोधित कराया है इससे बत्त हिन्दू काल की मना वृत्ति ही ध्वनित होती है। वस्तुतः वृषल शब्द से तो उनका क्षत्रियत्व और भी प्रमाणित होता है क्योंकि—

> शनकैस्तु क्रिया लोपा दिमा क्षत्रिय जातय
> वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानां मदर्शनात्।

से यही मालूम होता है कि जो क्षत्रियलोग वैदिक क्रियाओं से उदासीन हो जाते थे उन्हें धार्मिक दृष्टि से वृषलत्व प्राप्त होता था। वस्तुतः वे

जाति से क्षत्रिय थे स्वय अशोक मौर्य्य अपने को क्षत्रिय कहता था। ॐ

यह प्रवाद भी अधिकता से प्रचलित है कि मौर्य्यवश मुरा नाम की शूद्रा से चला है और चंद्रगुप्त उसका पुत्र था। यह भी कहा जाता है कि चद्रगुप्त मौर्य्य शूद्रा मुरा में उत्पन्न हुआ नन्द ही का पुत्र था। किन्तु V. A. Smith, लिखते हैं "But it is prehaps more probable that the dynasties of mouryas and nandas were not connected by blood".

तात्पर्य कि—यह अधिक संभव है कि नन्दों और मौर्यों का कोई रक्त संबन्ध न था। "Maxmuller भी लिखते हैं—The statement of Wilford that mourya meant in sansket the offspring of a barber and sudra women has never been proved.

मुरा शूद्रा तक ही न रहा एक नापित भी आ गया। मौर्य्य शब्द की व्याख्या करने जाकर कैसा भ्रम फैलाया गया है। मुरा से मौर और मौरेय बन सकता है न कि मौर्य्य। कुछ लोगों का अनुमान है कि शुद्ध शब्द मोरियहै 'उसने संस्कृत शब्द मौर्य्य बना है। परंतु, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि अशोक के कुछ ही समय बाद के पतञ्जलिने स्पष्ट मौर्य्य शब्द का उल्लेख किया है—"मौर्य्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चा प्रकल्पिताः" (भाष्य ५-३-९९) इसलिये मौर्य्य शब्द अपने शुद्ध रूप में संस्कृत का है न कि कहीं से लेकर संस्कार किया गया है तब यह तो स्पष्ट है कि मौर्य्य शब्द अपनी संस्कृत व्युत्पत्ति के द्वारा मुरा का पुत्र वाला अर्थ

नहीं प्रकट करता। यह वास्तव में कपोल कल्पना है, और यह भ्रम यूनानी लेखकों से प्रचारित किया गया है जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। अथ-कथा में मौर्य शब्द की एक और व्याख्या मिलती है। शाक्य लोगों में आपस में बुद्ध के जीवनकाल में ही एक झगड़ा हुआ और कुछ लोग हिमवान के पिछली कानन प्रदेश में अपना नगर बसाकर रहने लगे। उस नगर के सुंदर घरों पर क्रौञ्च और मोर पक्षी के चित्र अङ्कित थे इसलिये वहाँ के शाक्य लोग मोरिय कहलाये। पवनाक के कुछ सिक्के विहार में ऐसे भी मिले हैं जिन पर मयूर का चिह्न अंकित है इससे अनुमान किया जाता है कि ये मौर्य्यकाल के सिक्के हैं। किन्तु इनसे भी उनके क्षत्रिय होने का प्रमाण ही मिलता है।

हिंदी मुद्राराक्षस' की भूमिका में भारतेन्दुजी लिखते हैं कि— महानन्द जो कि नन्दवंश का था, उसके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ी रानी से आठ और मुरा नाम्नी नापित कन्या से नवाँ चन्द्रगुप्त। महानन्द से और उसके मंत्री शकटारसे वैमनस्य हो गया इस कारण मन्त्रीने चाणक्य द्वारा महानन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने राज्य पर बिठाया, जिसकी कथा मुद्राराक्षस में प्रसिद्ध है।"—किन्तु यह भूमिका जिसके आधार पर लिखी हुई है वह मूल संस्कृत मुद्राराक्षस के टीकाकार का लिखा हुआ उपोद्घात है। भारतेंदुजी ने उसे भी अविकल ठीक न मानकर कथा-सरित्सागर' के आधार पर उसका बहुत-सा संशोधन किया है। कहीं कहीं उन्होंने कई कथाओं का उलटफेर भी कर दिया है। जैसे हिरण्यगुप्त के रहस्य के बतलाने पर राजा के फिर शकटार से प्रसन्न होने की जगह विचक्षणा के उत्तर से प्रसन्न होकर शकटार को छोड़ देना तथा चाणक्य के द्वारा अभिचार से मारे जाने की

जगह महानन्द का विचक्षणा के दिये हुए विष से मारा जाना इत्यादि।

ढुंढि लिखते हैं कि—"कलि के आदि में नन्द नाम का एक राजवंश था। उसमें सर्वार्थसिद्धि मुख्य था। उसकी दो रानियाँ थीं—एक सुनन्दा दूसरी वृषला मुरा। सुनन्दा को एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य्य उत्पन्न हुआ। मौर्य्य के सौ पुत्र हुए। मन्त्री राक्षस ने उस मांसपिण्ड को तेल में नौ टुकड़े करके रक्खा, जिससे नौ पुत्र हुए। सर्वार्थसिद्धि अपने उन नौ लड़कों को राज्य देकर तपस्या करने चला गया। उन नौ नन्दों ने मौर्य्य और उसके लड़कों को मार डाला। केवल एक चन्द्रगुप्त प्राण बचा कर भागा, जो चाणक्य की सहायता से नन्दों का नाश करके, मगध का राजा बना।"

कथा-सरित्सागर के कथापीठ लम्बक में चन्द्रगुप्त के विषय में एक विचित्र कथा है। उसमें लिखा है कि—"नन्द के मर जाने पर इन्द्रदत्त (जो कि उसके पास गुरुदक्षिणा के लिये द्रव्य माँगने गया था)—ने अपनी आत्मा को योगबल से राजा के शरीर में डाला, और आप राज्य करने लगा। जब उसने अपने साथी वररुचि को एक करोड़ रुपया देने के लिये कहा तब मंत्री शकटार ने, जिसको राजा के मर कर फिर से जी उठने पर पहिले ही से शंका थी विरोध किया। तब उस योगनन्द राजा ने चिढ़कर उसको कैद कर दिया और वररुचि को अपना मंत्री बनाया। योगनन्द बहुत विलासी हुआ, उसने सब राजभार मंत्री पर छोड़ दिया। उसकी ऐसी दशा देखकर वररुचि ने शकटार को छुड़ाया और दोनों मिलकर राज्यकार्य करने लगे। एक दिन योगनन्द की रानी के चित्र में उसकी जाँघ पर एक तिल बना देने से राजा ने वररुचि पर शंका करके शकटार को उसके मार डालने की आज्ञा दी। पर शकटार ने अपने उपकारी को छिपा रक्खा।

योगनन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त ने जंगल में अपने मित्र रीछ से विश्वास
घात किया। इससे वह पागल और गूँगा हो गया। राजा ने कहा—
"यदि वररुचि होता तो इसका कुछ उपाय करता।" अनुकूल समय
देखकर शकटार ने वररुचि को प्रकट किया। वररुचि ने हिरण्यगुप्त का
सब रहस्य सुनाया और उसे नीरोग किया। इसपर योगनन्द ने पूछा कि
तुम्हें यह बात कैसे ज्ञात हुई? वररुचि ने उत्तर दिया—योगबल से जैसे
रानी की जाँघ का तिल।" राजा इस पर बहुत प्रसन्न हुआ, पर वह फिर
न ठहरा और जंगल में चला गया। शकटार ने समय ठीक देखकर चाणक्य
द्वारा योगनन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को राज्य दिलाया।

ढुंढि ने भी नाटक में वृषल और मौर्य शब्द का प्रयोग देखकर
चन्द्रगुप्त को मुरा का पुत्र लिखा है पर पुराणों में कहीं भी चन्द्रगुप्त
को वृषल या शूद्र नहीं लिखा है। पुराणों में जो शूद्र शब्द का प्रयोग
किया है वह शूद्राजात महापद्म के वंश के लिये है, यह नीचे लिखे हुए
विष्णु पुराण के उद्धृत अंश पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा—

ततो महानन्दी १८ इत्येते शैशुनाका भूपालास्त्रीणि वर्षशतानि द्विष
ष्ट्यधिकानि भविष्यन्ति १९ महानन्दिनस्ततः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽ-
तिबली महापद्म नामानन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रियनाशकारी
भविष्यति २० ततः प्रभृति शूद्राभूपालाः भविष्यन्ति २१ सचैकच्छत्र
मनुल्लङ्घित शासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यति २२ तस्याप्यष्टौसुताः सुमा
ल्याद्याः भवितारः २३ तस्य महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति २४ महापद्म
पुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति २५ ततश्च नवचैतान्नन्दान
कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति २६ तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति
२७ कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति २८

इससे यह मालूम होता है कि महानन्द के पुत्र महापद्म ने—जोशूद्राजात था—अपने पिता के बाद राज्य किया और उसके बाद सुमाल्य आदि आठ लड़कों ने राज्य किया और इन सबने मिलकर महानन्द के बाद १०० वर्ष राज्य किया। इनके बाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला।

अब यह देखना चाहिये कि चन्द्रगुप्त को जो लोग महानन्द का पुत्र बताते हैं उन्हें कितना भ्रम है, क्योंकि उन लोगों ने लिखा है कि—"महानन्द को मारकर चन्द्रगुप्त ने राज्य किया।" पर ऊपर लिखी हुई वंशावली से यह प्रकट हो जाता है कि महानन्द के बाद १०० वर्ष तक महापद्म और उसके लड़कों ने राज्य किया। तब चन्द्रगुप्त की कितनी आयु मानी जाय कि महानन्द के बाद महापद्मादि के १०० वर्ष राज्य कर लेने पर भी उसने २४ वर्ष शासन किया?

यह एक विलक्षण बात होगी यदि—"नन्दात क्षत्रिय कुलम्" के अनुसार शूद्राजात महापद्म और उसके लड़के तो क्षत्रिय मान लिये जाँय और—'अतः परं शूद्रा पृथिवीं भोक्ष्यन्ति' के अनुसार शूद्रता चन्द्रगुप्त से आरम्भ की जाय। महानन्द को जब शूद्रा से एक ही लड़का महापद्म था तब दूसरा चन्द्रगुप्त कहाँ से आया? पुराणों में चन्द्रगुप्त को कहीं भी महानन्द का पुत्र नहीं लिखा है। यदि सचमुच अन्तिम नन्द ही का नाम ग्रीकों ने Zandrmes रक्खा था, तो अवश्य ही हम कहेंगे कि विष्णुपुराण की महापद्मवाली कथा ठीक ग्रीकों से मिल जाती है—महानन्दिस्ततः शूद्रागर्भोद्भवोऽति लुब्धोऽति बली महापद्म नामनन्दः परशुराम इवा परोऽखिल क्षत्रान्तकारी भविष्यति।"

यह अनुमान होता है कि महापद्मवाली कथा, पीछे से बौद्धदेषी

लोगों द्वारा चन्द्रगुप्त की कथा में जोड़ी गई है क्योंकि इसीका पौत्र अशोक बुद्ध धर्म का प्रधान प्रचारक था।

ढुण्ढि के उपोद्घात से एक बात का और पता लगता है कि चन्द्रगुप्त महानन्द का पुत्र नहीं किन्तु मौर्य्य सेनापति का पुत्र था। जब पद्मादि शूद्रागर्भोद्भव होने पर भी नन्दवंशी कहाये, तब चन्द्रगुप्त मुरा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण नन्दवंशी होने से क्यों वंचित किया जाता है। इसलिये मानना पड़ेगा कि नन्दवंश और मौर्य्यवंश भिन्न है। मौर्य्यवंश अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है जिसका उल्लेख पुराण बृहत्कथा कामन्दक इत्यादि में मिलता है और पिछले काल के चित्तौर आदि के शिलालेखों में भी इसका उल्लेख है। इसी मौर्य्यवंश में चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ।

चन्द्रगुप्त का बाल्य जीवन

अर्थकथा स्थविरावली कथा सरित्सागर और ढुण्ढि के आधार पर चन्द्रगुप्त के जीवन की प्राथमिक घटनाओं का संकलन किया जाता है।

मगध की राजधानी पाटलीपुत्र शोण और गंगा के संगम पर थी। राजमन्दिर दुर्ग लम्बी-चौड़ी पण्य-वीथिका प्रशस्त राजमार्ग इत्यादि राजधानी के किसी उपयोगी वस्तु का अभाव न था। खाईं, सेना, रथ तरी इत्यादि से वह सुरक्षित भी थी। उस समय महापद्म का वहाँ राज्य था।

पुराण में वर्णित अखिल क्षत्रिय निधनकारी महापद्म नन्द या काल अशोक के लड़कों में सबसे बड़ा पुत्र एक नीच स्त्री से उत्पन्न हुआ था, जो मगध छोड़कर किसी अन्य प्रदेश में रहता था। उस समय किसी

डाकू से उससे भेंट हो गई और वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये उन्हीं डाकुओं के दल में मिल गया। जब उनका सरदार एक चढ़ाई में मारा गया तो वही राजकुमार उन सबों का नेता बन गया और उसने पाटलीपुत्र पर चढ़ाई की। उग्रसेन के नाम से उसने थोड़े दिनों के लिये पाटलीपुत्र का अधिकार छीन लिया। उसके बाद उसके आठ भाइयों ने कई वर्ष तक राज्य किया।

नवें नन्द का नाम धननन्द था, उसने गंगा के घाट बनवाये और उसके प्रवाह को कुछ दिन के लिये हटाकर उसी जगह अपना भारी खजाना गाड़ दिया, उसे लोग धननन्द कहने लगे। धननन्द के अन्नक्षेत्र में एक दिन तक्षशिला निवासी चाणक्य ब्राह्मण आया और सबसे उच्च आसन पर बैठ गया, जिसे देखकर धननन्द चिढ़ गया और उसे अपमानित करके निकाल दिया। चाणक्य ने धननन्द के नाश करने की प्रतिज्ञा की।

कहते हैं कि जब नन्द बहुत विलासी हुआ तो उसकी क्रूरता और भी बढ़ गई—प्राचीन मंत्री शकटार को बंदी करके वररुचि नामक ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया। मगध निवासी उपवर्ष के दो शिष्य थे, जिनमें से पाणिनि तो तक्षशिला में विद्याभ्यास करने गया था किन्तु वररुचि-जिसकी राक्षस से मैत्री थी—नन्द का मंत्री बना। शटकार जब बन्दी हुआ तब वररुचि ने उसे छुड़ाया, और एक दिन वही दशा मंत्री वररुचि की भी हुई। इनका नाम कात्यायन भी था। बौद्ध लोग इन्हें "मगधदेशीय ब्रह्मबंधु" लिखते हैं और पाणिनि के सूत्रों के बड़े वार्त्तिककार कात्यायन हैं। कितने लोगों का मत है कि कात्यायन और वररुचि भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं।

शकटार ने अपने वैर का समय पाया और वह विषप्रयोगद्वारा तथा एक दूसरे को लड़ाकर नन्दों में आंतरिक द्वेष फैला कर एक के बाद दूसरे को राजा बनाने लगा। धीरे धीरे *नन्दवंश का नाश हुआ* और केवल अन्तिमनंद बचा। उसने सावधानी से अपना राज्य सँभाला और वररुचि को फिर मंत्री बनाया। शकटार ने प्रसिद्ध चाणक्य को जो कि नीति शास्त्र विशारद होकर गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने के लिये राजधानी में आया था नन्द का विरोधी बना दिया। वह क्रुद्ध ब्राह्मण अपनी प्रतिहिंसा पूरी करने के लिये सहायक ढूँढने लगा।

पाटलीपुत्र के नगर प्रांत में पिप्पली-कानन के मौर्य सेनापति का एक विभव हीन गृह था। महापद्म नन्द के और उसके पुत्रों के अत्याचार से मगध काँप रहा था। मौर्य्य-सेनापति के बंदी हो जाने के कारण उसके कुटुम्ब का जीवन किसी प्रकार कष्ट से बीत रहा था।

एक बालक उसी घर के सामने खेल रहा था। कई लड़के उसकी *प्रजा बने थे और वह था उनका राजा। उन्हीं लड़कों में से वह किसी* को घोड़ा और किसी को हाथी बनाकर चढ़ता और दण्ड तथा पुरस्कार आदि देने का राजकीय अभिनय कर रहा था। उसी ओर से चाणक्य जा रहे थे। उन्होंने उस बालक की राजक्रीड़ा बड़े ध्यान से देखी। उनके मन में कुतूहल हुआ और कुछ विनोद भी। उन्होंने ठीक-ठीक ब्राह्मण की तरह उस बालक राजा के पास जाकर याचना की—राजन् मुझे दूध पीने के लिये गऊ चाहिये।—बालक ने राजोचित उदारता का अभिनय करते हुए सामने चरती हुई गौओं को दिखलाकर कहा—"इनमें से जितनी इच्छा हो तुम ले लो!

ब्राह्मण ने हँसकर कहा—राजन् ये जिनकी गायें हैं वह मारने लगे तो!

बालक ने सगर्व छाती फुलाकर कहा—किसका साहस है जो मेरे शासन को न माने? जब मैं राजा हूँ, तब मेरी आज्ञा अवश्य मानी जायगी।

ब्राह्मण ने आश्चर्यपूर्वक बालक से पूछा—राजन्, आपका शुभनाम क्या है?

तब तक बालक की माँ वहाँ आ गई, और ब्राह्मण को हाथ जोड़कर बोली—महाराज, यह बड़ा धृष्ट लड़का है, इसके किसी अपराध पर ध्यान न दीजियेगा।

चाणक्य ने कहा—कोई चिन्ता नहीं, यह बड़ा होनहार बालक है। इसकी मानसिक उन्नति के लिये तुम इसे किसी प्रकार राजकुल में भेजा करो।

उसकी माँ रोने लगी। बोली—हमलोगों पर राजकोप है, और हमारे पति राजा की आज्ञा से बंदी किये गये हैं।

ब्राह्मण ने कहा—बालक का कुछ अनिष्ट न होगा, तुम इसे अवश्य राजकुल में ले जाओ।

इतना कह, बालक को आशीर्वाद देकर चाणक्य चले गये।

बालक की माँ बहुत डरते-डरते एक दिन, अपने चपल और साहसी लड़के को लेकर राजसभा में पहुँची।

नन्द एक निष्ठुर, मूर्ख और त्रासजनक राजा था। उसकी राजसभा बड़े-बड़े चापलूस मूर्खों से भरी रहती थी।

पहिले के राजा लोग एक दूसरे के बल, बुद्धि और वैभव की परीक्षा लिया करते थे और इसके लिये वे तरह-तरह के उपाय रचते थे। जब बालक माँ के साथ राजसभा में पहुँचा उसी समय किसी राजा के यहाँ से,

नन्द की राजसभा की बुद्धि का अनुमान करने के लिये, लोहे के बन्द पिंजड़े में मोम का सिंह बनाकर भेजा गया था और उसके साथ यह कहलाया गया था कि पिंजड़े को खोले बिना ही सिंह को निकाल दीजिये।

सारी राजसभा इसपर विचार करने लगी; पर उन चाटुकार मूर्ख सभासदों को कोई उपाय न सूझा। अपनी माता के साथ वह बालक यह लीला देख रहा था। वह भला कब माननेवाला! उसने कहा—"मैं निकाल दूँगा।"

सब लोग हँस पड़े। बालक की ढिठाई भी कम न थी। राजा नन्द को भी आश्चर्य हुआ।

नन्द ने कहा—यह कौन है?

मालूम हुआ कि राजवन्दी मौर्य सेनापति का यह लड़का है। फिर क्या नन्द के सुलगता की अग्नि में एक और आहुति पड़ी। क्रोधित होकर बोला—यदि तू इसे न निकाल सकेगा, तो तू भी इस पिंजड़े में बन्द कर दिया जायगा।

उसकी माता ने देखा कि यह भी कहाँ से विपत्ति आई परन्तु, बालक निर्भीकता से आगे बढ़ा और पिंजड़े के पास जाकर उसको भली भाँति देखा। फिर लोहे की शलाकाओं को गरम करके उस सिंह को गला कर पिंजड़े को खाली कर दिया[1]।

---

1 'मधूच्छिष्टमयं धातु जीवन्तमिवपञ्जरे। सिंहमादाय नन्देभ्य प्राहिणोत्सिंहलाधिपः। यो द्रावयेदिमं क्रूरं द्वाग्नुद्घाट्य पंजरं। सबोऽस्ति कश्चित्सुमति रित्येवं संदिदेश च। चन्द्रगुप्तस्तुमेधावी प्रताप्य शलाकया। व्यरमयन्त ततोऽम्लिता।"

सब लोग चकित रह गये।

राजा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

बालक ने कहा—'चन्द्रगुप्त।'

ऊपर के विवरण से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त किशोरावस्था में नन्दों की सभा में रहता था। वहाँ उसने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया था।

पिप्पली कानन के मौर्य्य लोग नन्दों के क्षत्रिय-नाशकारी शासन से पीड़ित थे, प्रायः सब दबाये जा चुके थे। इस समय ये क्षत्रिय राजकुल नन्दों की प्रधान शक्ति से आक्रान्त थे। मौर्य्य भी नन्दों की विशाल वाहिनी में सेनापति का काम करते थे। सम्भवतः वे किसी कारण से राजकोप में पड़े थे और इनका पुत्र चन्द्रगुप्त नन्दों की राजसभा में अपना समय बिताता था। उसके हृदय में नन्दों के प्रति घृणा का होना स्वाभाविक था। जास्टिनस ने लिखा है। When by his insolent behaviour he has offended Nandus, and was ordered by King to be put to death, he sought safety by a speedy flight (Justinus X V)

चन्द्रगुप्त ने किसी वाद-विवाद या अनबन के कारण नन्द को क्रुद्ध कर दिया और इस बात में बौद्ध लोगों का विवरण ढुण्ढि का उपोद्घात तथा ग्रीक इतिहास-लेखक सभी सहमत हैं कि इसे राजक्रोध के कारण पाटलीपुत्र छोड़ना पड़ा।

शकटार और वररुचि के सम्बन्ध की कथायें जो कथा-सरित्सागर में मिलती हैं, इस बात का संकेत करती हैं कि महापद्म के पुत्र बड़े उच्छृङ्खल और क्रूर शासक थे। गुप्त षड्यन्त्रों से मगध पीड़ित था। राजकुल में भी

नित्य नये उपद्रव विरोध और द्वन्द्व चला करते थे उन्हीं कार्यों से चन्द्रगुप्त की भी कोई स्वतन्त्र परिस्थिति उसे भावी नियति की ओर अग्रसर कर रही थी। चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त ने सीमाप्रांत की ओर प्रस्थान किया।

महावंश के अनुसार बुद्ध के निर्वाण के १४ वर्ष बाद अजितसत्त को राज्य मिला, जिसने २७ वर्ष राज्य किया। इसके बाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला। यदि बुद्ध का निर्वाण ५४३ ई० पूर्व में मान लिया जाय तो उसमें से नन्दराज्य तक का समय १६२ घटा देने से ३८१ ई० पूर्व चंद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि मानी जायगी। पर यह सर्वथा अप्रामाणिक है क्योंकि ग्रीक इतिहास लेखकों ने लिखा है कि— 'तक्षशिला जब ३२६ ई० पूर्व में सिकन्दर से चंद्रगुप्त ने भेंट किया था तब युवक राजकुमार था। अस्तु यदि हम उसकी अवस्था उस समय २० वर्ष के लगभग मान लें जो कि असंगत न होगी, तो इसका जन्म समय ३४६ ई० पूर्व के लगभग हुआ होगा जो कि सत्य से बहुत दूर न होगा। मगध के राजविद्रोहकाल में वह १९ या २० वर्ष का रहा होगा।

मगध से चंद्रगुप्त के निकलने की तिथि ई० पूर्व ३२८ या ३ निर्धारित की जा सकती है, क्योंकि ३२६ में तो वह सिकंदर से तक्ष में मिला ही था। उसके प्रवास की कथा बड़ी रोचक है। सिकन्दर जिस समय भारतवर्ष में पदार्पण कर रहा था और भारतीय अ के सवनाश का उपक्रम तक्षशिलाधीश्वर ने करना विचार किया था वह समय भारत के इतिहास में स्मरणीय है तक्षशिला नगरी अ उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। यहीं का विश्वविद्यालय पाणिनि और जीवक ऐसे छात्रों का शिक्षक हो चुका था—यहीं यहाँ

अपनी स्वतंत्रता का पददलित कराने की आकांक्षा में आकुल थी और उसका उपक्रम भी हो चुका था। कूटनीति-चतुर सिकन्दर ने जैसा कि ग्रीक ग्रंथकार लोग कहते हैं १००० लैंट (प्रायः ३८००००० अडतीस लाख रुपया) देकर लोलुप देशद्रोही तक्षशिलाधीश को अपना मित्र बनाया जिसने प्रसन्न मन से अपनी कायरता का मार्ग खोल दिया और बिना बाधा सिकदर को भारत में आने दिया। ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा हम यह पता पाते हैं कि ई० पूर्व ३२६ में उसी समय चद्रगुप्त शत्रुओं से बदला लेने के उद्योग में अनेक प्रकार का कष्ट, मार्ग में झेलते-झेलते भारत की अर्गला तक्षशिला नगरी में पहुचा था। तक्षशिला के राजा ने भी महाराज पुरु से अपना बदला लेने के लिये सिकदर के लिये भारत का द्वार मुक्त कर दिया था। उन्हीं ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा यह पता चलता है कि चद्रगुप्त एक महाह भी अपने को परमुखापेक्षी नहीं बना रखा और वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला आया। Justinus लिखता है कि उसने अपनी असहनशीलता के कारण सिकदर को असंतुष्ट किया। वह सिकन्दर का पूरा विरोधी बन गया। For having offended Alexander by his impertinent language he was ordered to be put to death, and escaped only by flight.

(JUSTINUS)

In History of A. S Literature.

सिकन्दर और चंद्रगुप्त पंजाब में

सिकन्दर ने तक्षशिलाधीश की सहायता से झेलम को पार करके पोरस के साथ युद्ध किया इस युद्ध में क्षत्रिय महाराज (पर्वतेश्वर) पुरु किस तरह लड़े और वह कैसा भयङ्कर युद्ध हुआ यह केवल इससे ज्ञात होता है कि स्वयं जगद्विजयी सिकन्दर को कहना पड़ा— "आज हमको अपने बराबरी का भीम पराक्रम शत्रु मिला और मुझको तुल्य बल से आज ही युद्ध करना पड़ा" इतना ही नहीं सिकन्दर का प्रसिद्ध अश्व ' बूका फेलस " इसी युद्ध में हत हुआ और सिकन्दर भी स्वयं आहत हुआ।

यह सम्भव है कि सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने को उत्तेजित करने के लिये ही चन्द्रगुप्त उसके पास गया हो अथवा ग्रीक युद्ध की शिक्षा-पद्धति सीखने के लिये वहाँ गया हो। उसने सिकन्दर से तक्षशिला में अवश्य भेंट की यद्यपि उसका कोई कार्य्य वहाँ नहीं हुआ पर उसे ग्रीकवाहिनी रणचर्या अवश्य ज्ञात हुई जिससे कि उसने पार्वतीय सेना से मगधराज्य का उन्मूलन किया।

क्रमशः वितस्ता चन्द्रभागा इरावती के प्रदेशों को विजय करता हुआ सिकन्दर विपाशा तट तक आया और फिर मगधराज्य का प्रबल प्रताप सुन कर उसने दिग्विजय की इच्छा को त्याग दिया और ३२५ ई० पू० में फिलिप नामक पुरुष को क्षत्रप बनाकर आप बाबुल की ओर गया। इन दो वर्ष के बीच में चन्द्रगुप्त भी वहाँ प्रान्त में घूमता रहा और जब वह सिकन्दर का विरोधी बन गया था तो उसने पार्वत्य जातियों को सिकन्दर से लड़ने के लिये उत्तेजित किया और जिनके कारण सिकन्दर को इरावती से पाटल तक पहुँचने में दस मास का समय लग गया और

इस बीच में इन आक्रमणकारियों से सिकन्दर की बहुत क्षति हुई। इस मार्ग में सिकन्दर को मालव जाति से युद्ध करने में बड़ी हानि उठानी पड़ी। एक दुर्ग के युद्ध में तो उसे ऐसा अस्त्राघात मिला कि वह महीनों तक कड़ी बीमारी झेलता रहा। जलमार्ग से जानेवाले सिपाहियों को निश्चय हो गया था कि "सिकन्दर मर गया" किसी-किसी का मत है सिकन्दर की मृत्यु का कारण यही घाव था।

सिकन्दर भारतवर्ष को लूटने आया पर जाते समय उसकी यह अवस्था हुई कि अर्थाभाव से अपने सेक्रेटरी यूडोमिनिस से उसने कुछ द्रव्य माँगा और न पाने पर इसका कैम्प फुंकवा दिया। सिकन्दर के भारतवर्ष में रहते ही के समय में चन्द्रगुप्त द्वारा प्रचारित सिकन्दर द्रोह पूर्ण रूप से फैल गया था और इसी समय कुछ पार्वत्य राजा चन्द्रगुप्त के विशेष अनुगत हो गए थे, उनको रणचतुर बनाकर चन्द्रगुप्त ने एक अच्छी शिक्षित सेना प्रस्तुत कर ली थी और जिसकी परीक्षा प्रथमतः ग्रीक सैनिकों ने ली, इसी गड़बड़ में फिलिप मारा गया * और इस प्रदेश के लोग पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बन गये। चन्द्रगुप्त को पार्वतीय सैनिकों से बड़ी सहायता मिली और वे उसके मित्र बन गये। विदेशी शत्रुओं के साथ भारतवासियों का युद्ध देखकर चन्द्रगुप्त एक रणचतुर नेता बन गया। धीरे धीरे उसने सीमावासी पार्वतीय लोगों को एक में मिला लिया। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर विजय के हिस्सेदार हुए और सम्मिलित शक्ति से मगधराज्य विजय करने के लिये चल पड़े। अब यह देखना चाहिये कि

---

* सिकन्दर के चले आने पर इसी फिलिप ने षड्यन्त्र करके पोरस को मरवा डाला, जिससे बिगड़ कर इनकी हत्या हुई।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सहायक सेना में कौन कौन देश की सेनायें थीं और वे कब पंजाब से चले।

बहुत से विद्वानों का मत है कि जो सेना चन्द्रगुप्त के साथ थी वह ग्रीकों की थी। यह बात बिल्कुल असङ्गत नहीं प्रतीत होती क्यों 'फिलिप" तक्षशिला के समीप मारा गया तो सम्भव है कि विदे सरदार की सेना में से किसी प्रकार पर्वतेश्वर ने कुछ ग्रीकों की सेना अपनी ओर मिला लिया हो जो कि केवल धन की लालच से ग्रीस छोड़कर भारतभूमि तक आये थे। इसी सम्मिलित आक्रमणकारी सेना में कुछ ग्रीकों का होना असम्भव नहीं है क्योंकि मुद्रा राक्षस के टीका कार डुंढि लिखते हैं।

नन्द राज्याधपणानात्समुत्थाप्य महाबलम्।
पर्वतेन्द्रं म्लेच्छ बलं न्यरुन्ध कुसुमं पुरम्॥

तैलङ्ग महाशय लिखते हैं कि *The Yavanas refered in o*
play Mudrarakash were probably some of fronti
tribes कुछ तो इस सम्मिलित सेना के नीचे लिखे हुए नाम हैं जि कि महाशय तैलङ्ग ने लिखा है।

मुद्राराक्षस—	तैलङ्ग—
शक	मीडियन
यवन (ग्रीक ?)	अफगान
किरात	सवेजट्राइब
पारसीक	परशियन
वाहनीक	वैक्ट्रियन

इस सूची के देखने से ज्ञात होता है कि ये सब जातियाँ

ारत की उत्तर पश्चिम सीमा में स्थित हैं। इस सेना में उपरोक्त जातियाँ म्मिलित रही हों तो असम्भव नहीं है। चन्द्रगुप्त ने असभ्य सेनाओंको ैक प्रणाली से शिक्षित करके उन्हें अपने कार्ययोग्य बनाया। मेरा अनु-ान है कि यह घटना ३२३ ई० पू० में हुई क्योंकि वही समय सिकन्दर मरने का है। उसी समय यूडेमिस नामक ग्रीक कर्म्मचारी और क्षशिलाधीश के षट्चक्र से फिलिप के द्वारा पुरु (पर्वतेश्वर) की हत्या ुई थी। अस्तु, पञ्जाब प्रान्त एक प्रकार से अराजक हो गया और ३२२ ० पू० में उन सबों को स्वतंत्र बनाते हुए ३२१ ई० पू० में मगध राजधानी ाटली पुत्र को चन्द्रगुप्त ने जा घेरा। *

मगध में चन्द्रगुप्त

अपमानित चन्द्रगुप्त बदला लेनेके लिये खड़ा था, मगधराज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी, नन्द आन्तरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था, चाणक्य चालित म्लेच्छसेना कुसुमपुर को चारों ओर से घेरे हुई थी। चन्द्रगुप्त अपनी शिक्षित सेना को बराबर उत्साहित करता हुआ सुचतुर रणसेनापति का कार्य करने लगा।

पन्द्रह दिन तक कुसुमपुर को बराबर घेरे रहने के कारण और बार-बार खण्ड युद्ध में विजयी होने के कारण चन्द्रगुप्त एक प्रकार से मगध—

* Justins Says

Sandrocottus gave liberty to India after Alexander's retreat but soon converted the name of liberty into servitude after his success, subjecting those whom he had rescued from foreign domination to his own authority

H of A S Lit

विजयी हो गया । नन्द ने जो कि दुर्दान्त पापों से एक प्रकार भीत व आतुर हो गया था नगर से निकल कर चले जाने की आज्ञा माँगी चन्द्रगुप्त इस बात से सहमत हो गया कि धननन्द अपने साथ जो ले जा सके ले जाय पर चाणक्य की एक चाल यह भी थी, क्योंकि मगध की प्रजा पर शासन करना था इसलिए यदि धननन्द मारा जाता तो प्रजाओं के ओर विद्रोह करने की सम्भावना थी इसमें स्थविरावलि तथा ढुण्ढि के विवरण से मतभेद है क्योंकि स्थविरावलीकार लिखता है कि चाणक्य ने धननन्द को चले जाने की आज्ञा दी, पर ढुण्ढि का है चाणक्य के द्वारा शस्त्र से धननन्द निहत हुआ । मुद्राराक्षस से ज्ञात होता है कि यह विष प्रयोग से मारा गया । पर यह बात पहले नन्दों के लिए सम्भव प्रतीत होती है * चाणक्य की नीति की ओर दृष्टि डालने से यही ज्ञात होता है कि जान बूझ कर नन्द को अवसर दिया गया और इसके बाद किसी प्रकार से उसकी हत्या हुई ।

कई लोगों का मत है कि पर्वतेश्वर की हत्या किया गया चाणक्य ने की । पर जहाँ तक सम्भव है कि पर्वतेश्वर को कात्यायन साथ मिला हुआ जान कर ही चाणक्य के द्वारा विषकन्या पर्वतेश्वर को मिली और यही मत भारतेन्दुजी का भी है । मुद्राराक्षस को देखने से यही ज्ञात भी होता है कि राक्षस व उस पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से मिल गया था । सम्भव है कि उसका पिता भी वररुचि की ओर था

---

* However myst rions the nine nands may be indeed they realy were nine there is no doubt th[at] the last of them was deposed and slain by Chandragupt[a] V A Smith E H of India

मत से राज्य पर बैठा ऐसा मालूम होता है। आर्य्य विद्या सुधाकर अनुसार ४०० विक्रम पू० में महावीर स्वामी का वर्तमान होना माना है इससे यदि ५१० ई० पू० में महावीर स्वामी का निर्वाण मान लें तो इसमें से ११५ घटा देने से १६५ ई० पू० में चन्द्रगुप्त राज्यारोहण का समय होता है जो सर्वथा असम्भव है। यह मत बहुत भ्रम पूर्ण है।

पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने मेगास्थनीज की भूमिका में लिखा है ३१६ ई० पू० में चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा और २९२ ई० पू० तक इसने वर्ष राज्य किया।

पण्डितजी ने जो पाश्चात्य लेखकों के आधार पर चन्द्रगुप्त राज्यारोहण समय लिखा है वह भी भ्रम से रहित नहीं है क्य इतिहासज्ञों के मतानुसार २९६ में डिमाकस का मिशन विन्दुसार के में आया था। यदि २९२ तक चन्द्रगुप्त का राज्य काल मान लें तो डिमाकस चन्द्रगुप्त के राजत्व काल ही में आया था प्रतीत होगा क्योंकि शुक्लजी के मत में ३१६ ई० पू० से २९२ पू० तक चन्द्रगुप्त का राजत्व काल है डिमाकस के मिशन का २९६ ई० पू० जिसके अन्तर्गत हो जाता है। यदि हम चन्द्रगुप्त राज्यारोहण ३२१ ई० पू० में मानें तो इसमें से इसका राजत्व २४ वर्ष घटा देने से २९७ ई० पू० तक इसका राजत्व काल और ई० पू० में विन्दुसार का राज्यारोहण और डिमाकस के मिशन समय ठीक हो जाता है। ऐतिहासिकों का अनुमान है कि २५ की अवस्था में चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा' वह भी ठीक हो जाता है पूर्व निर्धारित चन्द्रगुप्त के जन्म समय ३४६ ई० पू० में २५ वर्ष

राज्य यद्यपि स्वतन्त्र थे, पर वे भी चन्द्रगुप्त के शासन से सदा भयभीत होकर मित्र-भाव का बर्ताव रखते थे। उसका राज्य पांडुचेरी और कनानूर से हिमालय की तराई तक तथा सतलज से आसाम तक था। केवल कुछ राज्य दक्षिण में, जैसे—केरल इत्यादि और पंजाब में वे प्रदेश जिन्हें सिकन्दर ने विजय किया था, स्वतन्त्र थे, किन्तु चन्द्रगुप्त पर ईश्वर की कृपा अपार थी, जिसने उसे ऐसा सुयोग दिया कि वह भी ग्रीक इत्यादि विदेशों में अपना आतङ्क फैलावे।

सिकन्दर के मर जाने के बाद ग्रीक जेनरलों में बड़ी स्वतन्त्रता फैली। ई० पू० ३२३ में सिकन्दर मरा, उसके प्रतिनिधि-स्वरूप पर्डिकस शासन करने लगा किन्तु उससे भी असन्तोष हुआ, सब जेनरल और प्रधान कर्मचारियों ने मिलकर एक सभा की। ई० पू० ३२१ में सभा हुई और सिल्यूकस बैबीलोन की गद्दी पर क्षत्रप बनाकर बैठाया गया। टालमी आदि मिस्र के राजा समझे जाने लगे, पर एंटिगोनस जो कि पूर्वीय एशिया का क्षत्रप था, अपने दल को बढ़ाने लगा और इसी कारण सब जेनरल उसके विरुद्ध हो गये, यहाँ तक कि ग्रीक साम्राज्य से अलग होकर सिल्यूकस ने ३१२ ई० पू० में अपना स्वाधीन राज्य स्थापित किया। बहुत-सी लड़ाइयों के बाद सन्धि हुई और सीरिया इत्यादि प्रदेश का एंटिगोनस स्वतन्त्र राजा हुआ। थ्रेस के लिसिमाकस मिस्र के टालेमी, और बैबीलोन के समीप के प्रदेश में सिल्यूकस का आधिपत्य रहा। यह सन्धि ३११ ई० पू० में हुई। सिल्यूकस ने उधर के झगड़ों को कुछ शान्त करके भारत की ओर देखा।

इसे भी वह ग्रीक साम्राज्य का एक अंश समझता था। आराको-सिया, बैक्ट्रिया, जेड्रोसिया आदि विजय करते हुए उसने ३०६ ई० पू०

में भारत पर आक्रमण किया। चन्द्रगुप्त इसी समय दिग्विजय करता हुआ पञ्जाब की ओर आ रहा था और इसने जब सुना कि ग्रीक लोग फिर भारत पर चढ़ाई कर रहे हैं वह भी इन्हीं की ओर बढ़ पड़ा। ह[illegible] यात्रा में ग्रीक लोग लिखते हैं कि इसके पास ६००००० सैनिक[illegible] जिसमें १०००० घोड़े और ९००० हाथी बाकी पैदल थे। ❀ इतिहास[illegible] पता मिलता है कि सिन्धुनद पर यह युद्ध हुआ।

सिल्यूकस सिन्धु के इस तीर पर आ गया मौर्यसम्राट इस आ[illegible] मण से अनभिज्ञ न था। इसके प्रादेशिक शासक जो कि पश्चिमो[illegible] प्रान्त के थे बराबर सिल्यूकस को प्रतिरोध करने के लिये प्रस्तुत रहते थे पर अनेक उद्योग करने पर भी कपिशा आदि दुर्ग सिल्यूकस के हस्त[illegible] हो ही गये। चन्द्रगुप्त, जो कि सतलज के समीप से इसी ओर आ[illegible] बढ़ रहा था सिल्यूकस की क्षुद्र विजयों से घबरा कर बहुत शीघ्रता तक्षशिला की ओर चल पड़ा। चन्द्रगुप्त के बहुत थोड़े पहले ही सि[illegible] कस सिन्धु के इसपार उतर आया और तक्षशिला के दुर्ग पर चढ़ाई क[illegible] के उद्योग में था। तक्षशिला की सूबेदारी बहुत बड़ी थी उस [illegible] कर लेना सहज कार्य्य न था। सिल्यूकस अपनी रक्षा के लिये मिट्टी[illegible] खाई बनवाने लगा।

चन्द्रगुप्त अपनी विजयिनी सेना लेकर तक्षशिला में पहुँचा [illegible] मौर्य्यपताका तक्षशिला दुर्ग पर फहरा कर महाराज चन्द्रगुप्त के [illegible]

❀ The same king (Chandragupta) trav r ed Ind[illegible] with an army of 600000 men and conquered t[illegible] whole

(Plutarch in H A S Lit)

न की सूचना देने लगी। मौर्य्यसेना ने आक्रमण करके ग्रीकों की
मट्टी की परिखा और उनका व्यूह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मौर्य्यों का यह
यानक आक्रमण उन लोगों ने बड़ी वीरता से सहन किया, ग्रीकों का
त्रिम दुर्ग उनकी रक्षा कर रहा था, पर कबतक, चारों ओर से असंख्य
ौर्यसेना उस दुर्ग को घेरे थी। आपाततः उन्हें कृत्रिम दुर्ग छोड़ना पड़ा।
स बार भयानक लड़ाई आरम्भ हुई। मौर्य्य सेना का चन्द्रगुप्त स्वयं
ायक था। असीम उत्साह से मौर्य्यों ने आक्रमण करके ग्रीक सेना को
छेन्न-भिन्न कर दिया। लौटने की राह में बड़ी बाधा स्वरूप सिन्धु नदी
ी, इसलिये अपनी टूटी हुई सेना को एक जगह उन्हें एकत्र करना पड़ा।
चन्द्रगुप्त की विजय हुई। इसी समय ग्रीक जेनरलों में फिर खलबली मची
ुई थी। इस कारण सिल्यूकस को शीघ्र उस ओर लौटना था, किसी
ेतिहासिक का मत है कि इसी से सिल्यूकस शीघ्र ही सन्धि कर-
ने पर बाध्य हुआ। इस सन्धि में ग्रीक लोगों को चन्द्रगुप्त और
ाणक्य से सब ओर से दबना पड़ा।

इस सन्धि के समय में कुछ मतभेद है। किसी का मत है कि यह
सन्धि ३०५ ई० पू० में हुई और कुछ लोग कहते हैं कि ३०३ ई० पू०
में। सिल्यूकसने जो ग्रीकसन्धि की थी, वह ३११ ई० पू० में हुई, उसके
बादही वह युद्धयात्रा के लिये चल पड़ा। अस्तु। आराकोसिया, जेड्रो-
सिया और बैक्ट्रिया आदि विजय करते हुए भारत तक आने में पाँच वर्ष
से विशेष समय नहीं लग सकता और इसीसे उस युद्ध का समय जो कि
चन्द्रगुप्त से उससे हुआ था, ३०६ ई० पू० माना गया। तब ३०५ ई०
पू० सन्धि का होना ठीक सा जँचता है। सन्धि में चन्द्रगुप्त भारतीय
प्रदेशों के स्वामी हुए। अफगानिस्तान और मकराना भी चन्द्रगुप्त को

मिला और उसके साथ ही साथ कुल पंजाब और सौराष्ट्र अधिकार हो गया । सिल्यूकस बहुत शीघ्र लौटने . . पू० में होनेवाले युद्ध के लिये उसे तैयार होना था जिसमें कि (Ips के मैदानमें उसने अपने विरोधी आंटिगोनस को मारा था । ३० इस ग्रीक विजय में बहुत सहायता दी और उसने इसी कारण नियमों से सन्धि करने के लिये सिल्यूकस को बाध्य किया।*

पाटल आदि बन्दर भी चन्द्रगुप्त के आधीन हुए तथा सिल्यूकस की ओर से एक राजदूत का रहना स्थिर हुआ। मेगास्थनीज प्रथम राजदूतनियत हुआ + यह तो सब हुआ पर सीतिवट्र ने एक और बुद्धिमानी का कार्य यह किया कि चन्द्रगुप्त से अपनी कन्या का पाणिग्रहण करा दिया जिसे चन्द्रगुप्त ने स्वीकार कर दोनों राज्य एक सम्बन्ध सूत्र में बँध गये । जिस पर सन्तुष्ट होकर चन्द्रगुप्त ने ५०० हाथियों की एक सेना सिल्यूकस को दी अब चन्द्रगुप्त का राज्य भारतवर्ष में सर्वत्र हो गया । रुद्र के लेख से ज्ञात होता है कि पुष्यगुप्त (१) उस प्रा का

* हिरात कन्दहार काबुल मकराना भी भारत में और के साथ सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को दे दिया V. A. Smith H. H. India

+ मेगास्थनीज हिरात के शत्रप साइबर्टियस के पास करता था।

(१) पुष्यगुप्तही ने इस पहाड़ी नदी का बाँध महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा से इसलिये बनाया कि खेती को बहुत लाभ होगा और उस झील का नाम सुदर्शन रक्खा।

ेयत किया गया था जो सौराष्ट्र और सिन्ध तथा राजपूताना
क था। अब चन्द्रगुप्त के आधीन दो प्रादेशिक शासक और हुए,
क तक्षशिला में दूसरा सौराष्ट्र में। इस तरह से अध्यवसाय का
ावतार चन्द्रगुप्त प्रबल पराक्रान्त राजा माना जाने लगा और ग्रीस,
मसर, सीरिया इत्यादि के नरेश उसकी मित्रता से अपना गौरव सम-
झते थे।

उत्तर में हिन्दुकुश, दक्षिण में पाडुचेरी और कनानूर, पूर्व में
ासाम और पश्चिम में सौराष्ट्र समुद्र तथा वाल्हीक तक, चन्द्रगुप्त
े राज्य की सीमा निर्धारित की जा सकती है।

चन्द्रगुप्त का शासन

गङ्गा और शोण के तट पर मौर्य्य राजधानी पाटलीपुत्र बसा था।
दुर्ग—पत्थर, ईंट तथा लकड़ी के बने सुदृढ़ प्राचीर से परिवेष्टित था।
ागर ८० स्टेडिया लम्बा और ३० स्टेडिया चौड़ा था। दुर्ग में ६४ द्वार
था ५७० बुर्ज थे। सौध श्रेणी, राज मार्ग, सुविस्तृत पण्यवीथिका से
गर पूर्ण था और व्यापारियों की दूकानें अच्छी प्रकार से सुशोभित
और सज्जित रहती थीं। भारतवर्ष की केन्द्र नगरी कुसुमपुरी वास्तव
में कुसुम पूर्ण रहती थी। सुसज्जित तुरङ्गों पर धनाढ्य लोग प्रायः राज
मार्ग में यातायात किया करते थे। गङ्गा के कूल में बने हुए सुन्दर राज-
मन्दिर में चन्द्रगुप्त रहता था और केवल तीन कामों के लिये महल के
बाहर आता—

पहिला, प्रजाओं का आवेदन सुनना, जिसके लिये प्रति दिन एक

बार चन्द्रगुप्त को विचारक का आसन ग्रहण करना पड़ता।
समय प्रायः तुरङ्ग पर, जो आभूषणों से सजा हुआ रहता था,
आरोहण करता और प्रतिदिन न्याय से प्रजा का शासन करता था।

दूसरा धर्मानुष्ठान बलिप्रदान करने के लिये, जो पर्व और
के उपलक्षों पर होते थे। मुक्तागुच्छ शोभित कार काव्यवर्णित
पर (जो कि सम्भवतः सुकी हुई होती थी) चन्द्रगुप्त आरोहण करता
इससे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त वैदिक धर्मावलम्बी * था क्योंकि
और जैन ये ही धर्म उस समय वैदिक धर्म के प्रतिकूल प्रचलित
बलिप्रदानादिक कर्म वैदिक ही होता रहा होगा।

---

* मैसूर में मुद्रित अर्थशास्त्र चाणक्य ही का बनाया है और
चन्द्रगुप्त के ही लिये बनाया गया है यह एक प्रकार से सिद्ध हो
है इसका उल्लेख प्रायः दशकुमारचरित, कादम्बरी तथा कामन्दकी
आदि में मिलता है। उसमें भी लिखा है कि सर्व शास्त्राण्यनुक्र
प्रयोगमुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः। (
पृष्ठ अर्थशास्त्र) यह नरेन्द्र शब्द चन्द्रगुप्त के ही लिये प्रयोग
गया है उसमें चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने का तथा वेदधर्मावलम्बी
के बहुत से प्रमाण मिलते हैं।

(तृतीय स्नान भोजनं च सेवेत स्वाध्याय च कुर्वीत) ३७ पृ०

(प्रतिष्ठितेऽहनि सन्ध्यामुपासीत) ३८ पृष्ठ अर्थशास्त्र।

स्वाध्याय और सन्ध्या से ही ज्ञात होता है कि
वेदधर्मावलम्बी थे और यहीं पर वह मुराशूद्रावाला कहावत
जाती है क्योंकि चाणक्य जिसने लिखा है कि शूद्रस्य द्विजाति

तीसरे, मृगया खेलने के समय कुंजर पर सवारी निकलती। बस
ाथ चन्द्रगुप्त स्त्री-गण से घिरा रहता था, जो धनुर्बाण आदि लिए
के शरीर की रक्षा करती थीं।

उस समय राजमार्ग डोरी से घिरा रहता था और कोई उसके भीतर
हीं जाने पाता था।

चन्द्रगुप्त राजसभा में बैठता, तो चार सेवक आबनूस के बेलन से उनका
ग संवाहन करते थे। यद्यपि चन्द्रगुप्त प्रबल प्रतापी राजा था, पर वह
डयन्त्रों से शंकित होकर एक स्थान पर सदा नहीं रहता था। जिसका कि
मुद्राराक्षस में कुछ आभास मिलता है और यह मेगास्थनीज ने भी लिखा है।

हाथी, पहलवान, मेंढा, और गैंडों की लड़ाई भी होती थी, जिसे राजा
और प्रजा दोनों बड़े चाव से देखते थे। बहुत से उत्सव भी नगर में
हुआ करते थे।

(अर्थशास्त्र) यही यदि चन्द्रगुप्त शूद्र होता तो उसके लिये "स्वाध्याय"
और "सन्ध्या" का उपदेश न देता।

अस्तु, जहाँ तक देखा जाता है, चन्द्रगुप्त वैदिक धर्मावलम्बी ही
था और यह भी प्रसिद्ध है कि अशोक ही ने बौद्ध धर्म्म को State
Religion बनाया।

अर्थशास्त्र में वर्षा होने के लिये इन्द्र की विशेष पूजा का उल्लेख
है तथा शिव, स्कन्द, कुबेर इत्यादि की पूजा भी प्रचलित थी, इनके
देवालय नगर के मध्य में रखना आवश्यक समझा जाता था।

अर्थशास्त्र २०६—५५—पृ०

R. C. dutt का भी मत है कि चन्द्रगुप्त और उसका पुत्र
बिन्दुसार बौद्ध नहीं था।

पहुँचाते उनको कठोर दण्ड से दण्डित करना उनका कार्य था। ज्ञात होता है कि व्यापार अथवा अन्य कार्यों के लिये बहुत से कुसुमपुर में आया करते थे।

तृतीय विभाग प्रजाओं की मरण और जन्म की गणना करता और जनपर कर निर्धारित करता था।

चतुर्थ विभाग व्यापार का निरीक्षण करता था और तुला तथ का प्रबन्ध करता था।

पंचम विभाग राजकीय कोष का था जहाँ द्रव्य बनाये जाते रक्षित रहते थे।

छठाँ विभाग राजकीय कर का था जिसमें कि व्यापारियों के दश दशमांश लिया जाता था और इन्हें खूब सावधानी से कार्य करना था जो इस कर को न देता वह कठोर दण्ड से दण्डित होता था।

राज्य के कर्मचारी लोग भूमि के नाप और जनपर कर निर्धारते थे और जल की नहरों का समुचित प्रबन्ध करते थे जिससे सब को सरलता होती थी। रुद्रदामा के गिनारवाले लेख से प्रतीत होता है कि सुदर्शन हद महाराज चन्द्रगुप्त के राजत्व काल में बना था। ज्ञात होता है कि राज्य में सर्वत्र जल का प्रबन्ध तथा कृषकों के कार्य विशेष ध्यान रहता था।

राज्य के प्रत्येक प्रान्तों में समाचार संग्रह करनेवाले थे जो समाचार चन्द्रगुप्त को देते थे। चाणक्य सा बुद्धिमान मन्त्री चन्द्रगुप्त बड़े भाग्य से मिला था और उसकी विद्वत्ता ऊपर लिखित प्रबन्धों से होती है। युद्धादिक के समय में भी भूमि बराबर जोती जाती थी, लिये कोई बाधा नहीं थी।

राजकीय सेना जिसे राजा अपने व्यय से रखते थे उसमें रणतरी
०० थी।※

८००० रथ, जो चार घोड़ों से जुते रहते थे, जिनपर एक रथी और
योद्धा रहते थे।

४००००० पैदल असिचर्म्म धारी, धनुर्वाणधारी।

३०००० अश्वारोही।

९०००० रण कुञ्जर जिन पर महावत लेकर ४ योद्धा रहते थे और
द्ध के भारवाही, अश्व के सेवक तथा अन्यान्य सामग्री ढोनेवालों को
लाकर ६००००० मनुष्य की भीड़भाड़ उस सेना में थी और उस सेना
भाग के प्रत्येक ६ विभागों में ५ सदस्य रहते थे।

प्रथम त्रिभाग नौ सेना का था।

दूसरा विभाग युद्ध सम्बन्धी भोजन, वस्त्र, छकड़े, बाजा, सेवक
र जानवरों के चारा का प्रबन्ध करता था।

तीसरे वर्ग के अधीन पैदल रहते थे।

चौथा विभाग अश्वरोहियों का था।

पाँचवाँ युद्ध-रथ की देखभाल करता था।

छठाँ युद्ध के हाथियों का प्रबन्ध करता था।

इस प्रकार सुशिक्षित सेना और अत्युत्तम प्रबन्ध से चन्द्रगुप्त ने
४ वर्ष तक भारतभूमि का शासन किया। भारतवर्ष के इतिहास

※ "नदीपर्वतदुर्गीयाभ्या नदी दुर्गीयात् भूमिलाभः श्रेयान्। नदी
गंहि हस्तिस्तम्भ सक्रम सेतुबन्धु नौभिस्साध्यम्"—अर्थ शास्त्र २९२

"नावध्ययक्षकसमुद्रसयान नदी सुखतर प्रचारान् देवसरोविसरो नदी
ाश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत। अर्थ शास्त्र १२६ पृ०

ुन्दर बैलों को सिकन्दर ने यूनान भी भेजा था। जानवरों में जङ्गली
' पालतू सब प्रकार के यहाँ मिलते थे। पक्षी भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों
ाहुत प्रकार के थे, जो अपने घोंसलों में बैठ कर भारत के सुस्वादु-
खाकर कमनीय कण्ठ से उसका जय मनाते थे। धातु भी यहाँ
ाः सब उत्पन्न होते थे। सोना, चाँदी, तांबा, लोहा और जस्ता इत्यादि
ी के खानों में से निकलते और उनसे अनेक प्रकार के उपयोगी अस्त्र,
त्र, साज, आभूषण इत्यादि प्रस्तुत होते थे। शिल्प यहाँ का बहुत
त अवस्था में था, क्योंकि उसके व्यवसायी सब प्रकार के कर से मुक्त
े थे। यही नहीं, उनको राजा से सहायता भी मिलती थी कि वे
च्छन्द होकर अपना कार्य करें। क्या विधि विडम्बना है, उसी भारत
शिल्प की, जहाँ के बनाये आडम्बर तथा शिल्प की वस्तुओं को देख-
यूनानियों ने कहा था कि भारत की राजधानी पाटलीपुत्र को देख-
' फारस की राजधानी कुछ भी नहीं प्रतीत होती।

शिल्पकार राजकर से मुक्त होने के कारण राजा और प्रजा दोनों
हितकारी यन्त्र बनाता था जिसमें सब कार्यों में सुगमता होती थी।
Pliny कहता है कि 'भारतवर्ष में मनुष्य पाँच वर्ग के हैं, एक
' लोग राजसभा में कार्य्य करते हैं, दूसरे सिपाही, तीसरे व्यापारी,
ाथे कृषक और एक पाँचवा वर्ग भी है जो कि दार्शनिक कहलाता है।'
पहले वर्ग के लोग सम्भवतः ब्राह्मण थे जो कि नीतिज्ञ होकर राज-
भा में धर्म्माधिकार का कार्य्य करते थे।
और सिपाही लोग अवश्य क्षत्रिय ही थे। व्यापारियों का वणिक
म्प्रदाय था। कृषक लोग शूद्र अथवा दास थे, पर वह दासत्व सुसभ्य
ोगों की गुलामी नहीं थी।

पाँचवा वर्ग उन ब्राह्मणों का था जो कि संसार से पृथक होकर ईश्वराराधना में अपना दिन बिताते तथा लोगों को धार्मिक करते थे। वे स्वयं यज्ञ करते थे और दूसरों कराते थे सम्भवतः वे ही मनुष्यों का भविष्य कहते थे उनका भविष्य कहना सत्य न होता तो वे फिर उस सम्मान से नहीं देखे जाते थे।

भारतवासियों का व्यवहार बहुत सरल था। यज्ञ को मदिरा और कभी नहीं पीते थे। लोगों का व्यय इतना परिमित था वे सूद पर ऋण कभी नहीं लेते थे। भोजन वे लोग नियत तथा अकेले ही करते थे। व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होते थे से उन लोगों को घृणा थी। बारीक मलमल के कामदार कपड़े वे पहनते थे। उन्हें सौन्दर्य्य का इतना ध्यान रहता था उन्हें छाता लगाकर चलता था। आपस में मुकद्दमें बहुत होते थे।

विवाह एक जोड़े बैल देकर होता था और विशेष उत्सव में स्त्री से कार्य्य करते थे। तात्पर्य्य यह कि महाराज चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त शासन में प्रजा शान्तिपूर्वक निवास करती या और सब लोग आनन्द अपना जीवन व्यतीत करते थे।

शिल्प वाणिज्य की अच्छी उन्नति थी राजा और प्रजा में सद्भाव था, राजा अपनी प्रजा के हितसाधन में सदैव तत्पर रहता प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को सन्तुष्ट रखती थी। चक्रवर्ती गुप्त का शासनकाल भारत का स्वर्णयुग था।

चाणक्य

इनके बहुत से नाम मिलते हैं—विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य, वात्स्या-
द्रमिल इत्यादि इनके प्रसिद्ध नाम हैं। भारतीय पर्य्यटक इन्हें दक्षिण
कोङ्कणस्थ ब्राह्मण लिखते हैं और इसके प्रमाण में वे लिखते हैं कि
उ देशीय ब्राह्मण प्रायः कूटनीतिपटु होते हैं। चाणक्य की
ओं में मिलता है कि वह श्यामवर्ण के पुरुष तथा कुरूप थे क्योंकि
कारण से वह नन्द की सभा से श्राद्ध के समय हटाये गये।
ों के मत से चाणक्य गोल्ल ग्रामवासी थे और जैन धर्मावलम्बी
वह नन्द द्वारा अपमानित होने पर नन्द वंश के नाश करने
तिज्ञा करके बाहर निकल पड़े और चन्द्रगुप्त से मिलकर उसे कौशल
न्द्रराज्य का स्वामी बना दिया।

बौद्ध लोग उन्हें तक्षशिला निवासी ब्राह्मण बतलाते हैं और कहते हैं
न्द को मार कर चाणक्य ही ने चन्द्रगुप्त को राज्य दिया। पुराणों
मलता है कि कौटिल्यो नाम ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति। अस्तु। सब
कथाओं का अनुमान करने से जाना जाता है, चाणक्य ही चन्द्रगुप्त
उन्नति के मूल हैं। चाणक्य के बारे में जस्टिस तैलङ्ग लिखते हैं:—

Chanakya is represented as a clear-headed, self
ıfidant intriguing hard politician with ultimate end
his ambitoin thoroughly well determined and
ecting all his clearheanedness and intrigue to the
complishment of that end"

V. A. Smith लिखते हैं कि Nor is there any reason to
scredit the statements that the usurper was attacked

के (नमः शुक्र बृहस्पतिभ्यां) ऐसा मंगलाचरण आचार्यों के प्रति कृतज्ञता सूचक वैदिक हिन्दुओं का नहीं हो सकता, क्योंकि वे प्रायः ईश्वर को नमस्कार करते हैं। किन्तु काम सूत्र के मंगलाचरण के संबंध में क्या होगा जिसका मंगलाचरण है "नमो धर्मार्थ कामेभ्यो।" इसमें भी तो ईश्वर की वन्दना नहीं की गई है, तो क्या वात्स्यायन भी जैन थे? इसलिए यह सब बातें व्यर्थ हैं। जैनों के अतिरिक्त जिन लोगों का चरित्र उन लोगों ने लिखा है उसे अद्‌भुत, कुत्सित, और अप्रासंगिक बना डाला है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुल भारतीय चरित्रों को जैन ढाँचे में ढालने का जैन संस्कृत साहित्य द्वारा असफल प्रयत्न किया गया है। यहाँ तक उन लोगों ने लिख डाला है कि चन्द्रगुप्त को भूख लगी तो चाणक्य ने एक ब्राह्मण के पेट से गुलगुले निकाल कर खिलाए। ऐसी अनेक आश्चर्यजनक कपोल कल्पनाओं के आधार पर चन्द्रगुप्त और चाणक्य को जैन बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

इसलिये बौद्धों के विवरण की ओर ही ध्यान आकर्षित होता है। बौद्ध लोग कहते हैं कि "चाणक्य १ तक्षशिला निवासी थे" और इधर हम देखते हैं कि तक्षशिला * में उस समय विद्यालय था जहाँ कि पाणिनि, जीवक आदि पढ़ चुके थे। अस्तु सम्भवतः चाणक्य जैसा कि बौद्ध लोग कहते हैं तक्षशिला में रहते या पढ़ते थे। जब हम चन्द्रगुप्त की सहायक

* Cunnigham साहब वर्तमान शाह देहरी के समीप में तक्षशिला का होना मानते हैं। रामचन्द्र के भाई भरत के दो पुत्रों के नाम से इसी ओर दो नगरियां बसाई गई थीं, तक्ष के नाम से तक्षशिला और पुष्कल के नाम से पुष्कलावती। तक्षशिला का विद्यालय उस समय भारत के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में से एक था।

सेना की ओर ध्यान देते हैं तो यह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि चाणक्य तक्षशिला से अवश्य सम्बन्ध था क्योंकि चाणक्य अवश्य उनमें थे नहीं तो वे लोग चन्द्रगुप्त को क्या जानते । अस्तु हमारा यही मान है कि चाणक्य उसी प्रान्त के ब्राह्मण थे जहाँ कि मगध विजय के लिए सहायता पाई । वह स्थान भारत की सीमा में तक्षशिला के समीप था जहाँ के लोगों में चाणक्य परिचित और उनसे चन्द्रगुप्त को सहायता मिली ।

पाटलीपुत्र उस समय प्रधान नगरी थी द्रव्योपार्जन या सुख्याति लिए चाणक्य तक्षशिला से विद्याध्ययन करके यहाँ आये । किसी कारण वश वह राजा पर कुपित हो गये जिसके बारे में प्राय सब विज्ञ मिलते जुलते हैं । वह ब्राह्मण भी प्रतिज्ञा करके उठा कि आज से जब तक नन्दवंश का नाश न कर लूँगा शिखा न बाँधूँगा और फिर को मिलाकर जो जो कार्य उन्होंने किए वह पाठकों को ज्ञात ही है।

जहाँ तक ज्ञात होता है कि चाणक्य वेदधर्मावलम्बी कृष्णवर्ण प्रखर प्रतिभावान और हठी थे ।

उनकी नीति अनोखी होती थी और उनमें अलौकिक क्षमता थी नीति-शास्त्र के आचार्यों में उनकी गणना है । उनके बनाये नीचे लिखे हुए ग्रन्थ बतलाये जाते हैं । चाणक्यनीति अर्थ शास्त्र कामसूत्र और न्यायभाष्य ।

यह अवश्य कहना होगा कि वह मनुष्य बड़ा प्रतिभाशाली था जिसके बुद्धिबल से प्रशंसित राजकार्य क्रम से चन्द्रगुप्त ने भारत साम्राज्य किया ।

अर्थशास्त्र में चाणक्य ने लिखा है—

पुरुष-पात्र

चाणक्य (विष्णुगुप्त)—	मौर्य्य साम्राज्य का निर्म्माता
चन्द्रगुप्त—	मौर्य्य सम्राट्
नन्द—	मगध-सम्राट्
राक्षस—	मगध का अमात्य
वररुचि (कात्यायन)—	मगध का अमात्य
शकटार—	मगध का मन्त्री
आम्भीक—	तक्षशिला का राजकुमार
सिंहरण—	मालवगण-मुख्य का कुमार
पर्व्वतेश्वर—	पंजाब का राजा (ग्रीक ऐतिहासिकों का पोरस)
सिकन्दर—	ग्रीक-विजेता
फिलिपस—	सिकन्दर का क्षत्रप
मौर्य्य-सेनापति—	चन्द्रगुप्त का पिता
एनीसाक्रीटीज—	सिकन्दर का सहचर

देवबल }
नागदत्त } — मालव गण-तन्त्र के पदाधिकारी
गण-मुख्य }

साइबर्टियस }
मेगास्थनीज } — यवन-दूत

गांधार-नरेश— आम्भीक का पिता
सिल्यूकस— सिकन्दर का सेनापति
दाण्ड्यायन— एक तपस्वी

स्त्री-पात्र

अलका— तक्षशिला की राजकुमारी
सुवासिनी— शकटार की कन्या
कल्याणी— मगध-राजकुमारी
नीला }
लीला } — कल्याणी की सहेलियाँ
मालविका— सिन्धु देश की कुमारी
कार्नेलिया— सिल्यूकस की कन्या
मौर्य्य पत्नी— चन्द्रगुप्त की माता
एलिस— कार्नेलिया की सहेली

चन्द्रगुप्त

प्रथम अङ्क

१

स्थान—तक्षशिला के गुरुकुल का मठ

चाणक्य और सिंहरण

चाणक्य—सौम्य, अब अवधि पूरी हो चुकी। कुलपति ने
के गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है। केवल
हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिये ठहरा था, क्योंकि
। वर्ष के भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ाकर मुझे
किञ्चन को गुरु-दक्षिणा चुका देनी थी।

सिंहरण—आर्य्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आव-
कता नहीं जितनी अस्त्रशास्त्र की। इसी लिये मैं पाठ में पिछड़ा
ा, क्षमा-प्रार्थी हूँ।

चाणक्य—अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे?

सिंह०—अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तो तक्षशिला
ी राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य—मुझे प्रसन्नता होती है कि तुम्हारा पढ़ना सफल होगा। क्या तुम जानते हो कि यवनों क्यों आये हैं ?

सिंह०—मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ। भविष्य लिखने के लिये कुचक्र और प्रतारणा का लगना मसी प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्डराज्य द्वेष हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

सहसा आम्भीक और अलका का प्रवेश—

आम्भीक—कैसा विस्फोट ? युवक, तुम कौन हो ?

सिंह०—एक मालव।

आम्भीक—नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

सिंह०—तक्षशिला-गुरुकुल का एक छात्र।

आम्भीक—देखता हूँ कि तुम दुर्विनीत भी हो।

सिंह०—कदापि नहीं राजकुमार। विनम्रता के होना मालवों का वंशानुगत-चरित्र है, और मुझे शिक्षा का भी गर्व है।

आम्भीक—परन्तु तुम किसी विस्फोट की बातें अभी कर रहे थे। और चाणक्य, क्या तुम्हारा भी इसमें कुछ हाथ है ?

चाणक्य चुप रहता है।

आम्भीक—(सक्रोध)—बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में मेरे अन्न से पल कर मेरे ही विरुद्ध कुचक्रों का सृजन !

चाणक्य—राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में

र न किसी के अन्न से पलता है , स्वाराज्य मे विचरता है और
मृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब
ई सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपो को ठुकरा
ा है। प्रकृति के कल्याण के लिये अपने ज्ञान का दान देता है।

आम्भीक—वह काल्पनिक महत्त्व मायाजाल है; प्रत्यक्ष
व कर्म्म उन पर पर्दा नहीं डाल सकते।

चाणक्य—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय! इसी से तो
ु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य्यजाति पतन के
ारे पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।

आम्भीक—और तुम धक्का देने का कुचक्र विद्यार्थियों को
ला रहे हो!

सिंह०—विद्यार्थी और कुचक्र! असंभव! यह तो वे ही कर
कते हैं जिनके हाथ मे कुछ अधिकार हो—जिनका स्वार्थ
द्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनो की
त्रता के लिये स्वयं वाल्हीक तक......

आम्भीक—बस-बस दुर्द्धर्ष युवक! बता तेरा अभिप्राय
ा है?

सिंह०—कुछ नहीं।

आम्भीक—नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंह०—गुरुकुल मे केवल आचार्य्य की आज्ञा शिरोधार्य्य
ती है; अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं
जकुमार!

चंद्र०—क्यों, क्या वह एक निस्सहाय छात्र तुम्हारे राज्य में
ा पाता है और तुम एक राजकुमार हो—बस इसी लिये ?

आम्भीक तलवार चलाता है, चंद्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता
आम्भीक की तलवार छूट जाती है। वह निस्सहाय होकर चंद्रगुप्त
मण की प्रत्याशा करता है। बीच में अलका आ जाती है।

सिंह०—वीर चंद्रगुप्त, बस। जाओ राजकुमार, यहाँ कोई
क नहीं है; अपने कुचक्रों से अपनी रक्षा स्वयं करो।

चाणक्य—राजकुमारी, मैं गुरुकुल का अधिकारी हूँ। मैं
ज्ञा देता हूँ कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ।
कुल में शस्त्रों का प्रयोग शिक्षा के लिये होता है, द्वंद्वयुद्ध के
े नहीं। विश्वास रखना, इस दुर्व्यवहार का समाचार महा-
 के कानों तक न पहुँचेगा।

अलका—ऐसा ही हो। चलो भाई !

क्षुब्ध आम्भीक उसके साथ जाता है।

चाणक्य—(चंद्रगुप्त से)—तुम्हारा पाठ समाप्त हो चुका है
र आज का यह काण्ड असाधारण है, मेरी सम्मति है कि तुम
म तक्षशिला का परित्याग कर दो। और सिंहरण, तुम भी।

चंद्र०—आर्य्य, हम मागध हैं और यह मालव। अच्छा
ा कि यहीं गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते।

चाणक्य—क्या यही मेरी शिक्षा है ? बालकों की-सी चपलता
दिखलाने का यह स्थल नहीं है। तुम लोगों को समय पर शस्त्र
प्रयोग करना पड़ेगा। परंतु अकारण रक्तपात नीति-विरुद्ध है।

चद्र०—आर्य्य। ससार भर की नीति और शिक्षा का मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लि[illegible] जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है, मित्र है, मेरा ही है।) चन्द्रगुप्त का चरित्र

चाणक्य—देखूँगा कि इस आत्म सम्मान का भविष्य में तुम कहाँ तक उत्तीर्ण होते हो।

सिंह०—आपके आशीर्वाद से हम लोग अवश्य

चाणक्य—आत्मसम्मान की रक्षा के पहले, वह होगा। व्यक्तिगत मान के लिये तो तुम प्रस्तुत हो, क्योंकि मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का [illegible] न? परंतु आत्मसम्मान इतने ही से सतुष्ट नहीं हो[illegible] और मागध को भूलकर जब तुम आर्य्यावर्त्त का नाम[illegible] वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दि[illegible] आर्य्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशि[illegible] से पददलित होंगे। (आज जिस व्यग को लेकर इतनी घट[illegible] गई है उसका अधिकार अब यहीं तक नहीं रहा। भावी गांधार[illegible] आम्भीक के हृदय में यह बात शल्य के समान चुभ गई है। [illegible] नद-नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण, यह क्षुद्र हृदय आम्[illegible] यवनों का स्वागत करेगा और आर्य्यावर्त्त का सर्वनाश हो[illegible]

चद्र०—गुरुदेव, विश्वास रखिये, यह सब कुछ नहीं पावेगा। यह चद्रगुप्त आपके चरणों की शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा [illegible] है, कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।

सिंह —परन्तु भद्रे, जीवन काल में भिन्न भिन्न ... पराना करते हुए जो ठहरता हुआ चलता है वह दूसरों को ... हो पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है परन्तु निष्फल नहीं ...

अलका—किन्तु मनुष्य को अपने जीवन ... ध्यान रखना चाहिये।

सिंह०—मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी ... और पत्थर से भी कठोर, करुणा के लिये निरवकाश हृदय ... हो जायगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिये ... क्या, अनागत भविष्य के लिये भय क्या और वर्तमान को ... अपने अनुकूल बना ही लूँगा फिर चिन्ता किस बात की ...

अलका—मालव, तुम्हारे देश के लिये तुम्हारा जीवन ... है, और वही यहाँ आपत्ति में है।

सिंह०—राजकुमारी, इस अनुकम्पा के लिये कृतज्ञ हुआ ... परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं गांधार भी है। यही क्या, ... आर्य्यावर्त्त है, इसलिये मैं

अलका—(आश्चर्य से)—क्या कहते हो ?

सिंह०—गांधार आर्य्यावर्त्त से भिन्न नहीं है, इसी लिये ... पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।

अलका—(निःश्वास लेकर)—इसका मैं अनुभव करती ... हूँ। परन्तु जिस देश में ऐसे वीर युवक हों, उसका ... है। मालव वीर, तुम्हारे मनोबल में स्वतन्त्रता है और तुम्हारी भुजाओं में आर्य्यावर्त्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित

चाहिये। मैं भी आर्य्यावर्त्त की बालिका हूँ—इसी नाते तुमसे
रोध करती हूँ कि तुम शीघ्र गांधार छोड़ दो। मैं आम्भीक को
क-भर पतन से रोकूँगी परंतु उसके न मानने पर तुम्हारी
श्यकता होगी। जाओ वीर!

सिंह०—अच्छा राजकुमारी, तुम्हारे स्नेहानुरोध से मैं जाने
लिये बाध्य हो रहा हूँ। शीघ्र ही चला जाऊँगा देवि! किन्तु
किसी प्रकार सिंधु की प्रखर धारा को यवन-वाहिनी न पार
सकती.. ....!

अलका—मैं चेष्टा करूँगी वीर, तुम्हारा नाम?

सिंह०—मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण।

अलका—अच्छा फिर कभी। कुमार, सावधान!

दोनों एक दूसरे को देखते हुए प्रस्थान करते हैं।

मगध-सम्राट का विलास-कानन

विलासी युवक और युवतियों के दल का विहार

नन्द—(प्रवेश करके)—आज वसंत उत्सव है क्या!

एक युवक—जय हो देव! आपकी आज्ञा से नागरिकों ने आज ही आयोजन किया है।

नन्द—परंतु मदिरा का तो तुम्हारे समाज में फिर आमोद कैसा?—(एक युवती से)—देखो-देखो—तु ही, परंतु तुम्हारे यौवन का विभ्रम अभी संकोच जकड़ा हुआ है। तुम्हारी आँखों में काम का सुकुमार नहीं, अनुराग की लाली नहीं। फिर कैसा प्रमोद!

एक युवती—हम लोग तो निमंत्रित नागरिक हैं देव!! दायित्व तो निमंत्रण देने वाले पर है।

नन्द—वाह, यह अच्छा उलाहना रहा!—(अनुचर से) मूर्ख! अभी और कुछ सुनवावेगा? तू नहीं जानता कि मैं म से अधिक इन सुंदरियों के कुटिल कटाक्षों से डरता हूँ। ले शीघ्र ले आ—नागरिकों पर तो मैं राज्य करता हूँ परंतु मग की नागरिकाओं—कुसुमपुर की काम कामिनियों—का शासन ऊपर है। श्रीमती, सबसे कह दो—नागरिक नन्द कुसुमपुर कमनीय कुसुमों से अपराध के लिये क्षमा माँगता है और के दिन वह तुम लोगों का कृतज्ञ सहचर मात्र है।

अनुचर लोग प्रत्येक कुंजों में मदिरा-कलश और चषक पहुँचाते हैं, राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश, पीछे-पीछे कुछ नागरिक।

राक्षस—सुवासिनी ! एक पात्र और ; चलो इस कुंज मे।

सुवा०—नहीं अब मैं न सम्हाल सकूँगी।

राक्षस—फिर इन लोगो से कैसे पीछा छूटेगा ?

सुवा०—मेरी एक इच्छा है।

एक नागरिक—क्या इच्छा है सुवासिनी, हम लोग अनुचर हैं। केवल एक सुंदर आलाप की, एक कोमल मूर्च्छना की लालसा है। दुहाई है सुवासिनी !

सुवा०—अच्छा तो अभिनय के साथ !

सब—(उल्लास से)—सुंदरियो की रानी सुवासिनी की जय !

सुवा०—परंतु राक्षस को कच का अभिनय करना पड़ेगा।

एक०—और तुम देवयानी. क्यो ? यही न। राक्षस सचमुच राक्षस होगा यदि इसमें आनाकानी करे तो.... चलो राक्षस !

दूसरा—नही मूर्ख ! आर्य्य राक्षस कह। इतने बड़े कला-कुशल विद्वान् को किस प्रकार सम्बोधित करना चाहिये, तू अभी नहीं जानता। आर्य्य राक्षस ! इन नागरिको की प्रार्थना से इस कष्ट को स्वीकार कीजिये।

राक्षस उपयुक्त स्थान ग्रहण करता है। कुछ मूक अभिनय फिर उसके बाद सुवासिनी का भाव-सहित गान—

तुम कनक किरण के अन्तराल मे
लुक छिप कर चलते हो क्यो ?

नत मस्तक गर्व वहन कर
यौवन के घन, रस कन ढर

हे लाज - भरे सौन्दर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों
कल-कल ध्वनि की गुंजारों

मधुसरिता सी यह हँसी,
तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रम की बीत
रजनीगंधा की कली खिली

अब सान्ध्य मलय आकुलित
दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों ?

'साधु-साधु' की ध्वनि

नन्द—उस अभिनेत्री को यहाँ बुलाओ ।

सुवासिनी नन्द के समीप आकर प्रणत होती है ।

नन्द—तुम्हारा अभिनय तो अभिनय नहीं हुआ !

नागरिक—अपितु वास्तविक घटना, जैसी देखने में आवे वैसी ही ।

नन्द—तुम बड़े चतुर हो । ठीक कहा ।

सुवासिनी—तो मुझे दण्ड मिले । आज्ञा कीजिये देव !

नन्द—मेरे साथ एक पात्र ।

सुवासिनी—परन्तु देव, एक बड़ी भूल होगी ।

नन्द—वह क्या ?

सुवासिनी—आर्य्य राक्षस का अभिनय पूर्ण गान नही हुआ ।

नन्द—राक्षस !

नागरिक—यहीं हैं, देव !

राक्षस आकर प्रणाम करता है ।

ंद—वसंतोत्सव की रानी की आज्ञा से तुम्हे गाना होगा ।

ाक्षस—उसका मूल्य होगा एक पात्र कादम्ब ।

सुवासिनी पात्र भर कर देती है ।

ुवासिनी मान का मूक अभिनय करती है. राक्षस सुवासिनी के ।
। अभिनय सहित गाता है ।

नेकल मत बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत
ारद नीरद माला के बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत

पड़ रहे पावन प्रेम - फुहार
जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर
सम्हाले चल कितनी है दूर
प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर

अश्रुमय सुंदर विरह निशीथ
भरे तारे न ढुलकते आह !
ा उफना दे आँसू हैं भरे
न्हीं आँखो मे उनकी चाह

काकली-सी बनने का दुः
लगन लग जाय न हे भग
पपीहा का पी सुनता क
अरे कोकिल की देख दश

हृदय है पास साँस की राह
चले आना जाना चुपचाप
अरे छाया बन छू मत उस
भरा है तुझमें भीषण ताप

हिला कर धड़कन से अवि
जगा मत सोया है सुकुमार
देखता है स्मृतियों का स्व
हृदय पर मत कर अत्याचार

कई नागरिक—स्वर्गीय अमात्य वक्रनास के कुल का द
नन्द—क्या कहा—वक्रनास का कुल ?
नागरिक—हाँ देव, आर्य्य राक्षस इन्हीं के भ्रातुष्पुत्र हैं।
नन्द—राक्षस, आज से तुम मेरे अमात्यवर्ग में नि
तुम तो कुसुमपुर के एक रत्न हो।

उसे माला पहनाता है और शस्त्र देता है।

सब—सम्राट् की जय हो। अमात्य राक्षस की जय हो।
नन्द—और सुवासिनी, तुम मेरी अभिनयशाला की रानी
सब हर्ष प्रकट करते हुए जाते हैं।

चाणक्य—हे भगवन्! एक बात दया करके और बता दो—
ःटार की कन्या सुवासिनी कहाँ है ?

प्रति०—(जोर से हँसता है)—युवक! वह बौद्ध विहार में
ी गई थी परंतु वहाँ भी न रह सकी, पहले तो अभिनय
ती फिरती थी, आजकल कहाँ है नहीं जानता।

जाता है।

चाणक्य—पिता का पता नहीं, झोपड़ी भी न रह गई।
सिनी अभिनेत्री हो गई—संभवतः पेट की ज्वाला से। एक
ा दो-दो कुटुम्ब का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में
रहा है! क्या इसी लिये राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन
य ने किया था? मगध! मगध! सावधान! इतना अत्या-
! असंभव है। तुझे उलट दूँगा! नया बनाऊँगा, नहीं तो
ही करूँगा!—(ठहरकर)—एक बार चलूँ, नंद से कहूँ!
परंतु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वही मिल जाय; मैं शास्त्र-व्यव-
ी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-बुराई
त्या! तो चलूँ।—(देखकर)—यह एक लकड़ी का स्तम्भ
ी उसी झोपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की
ों भाँवरियाँ लिपटी हुई है; जिन पर मेरी धवल मधुर
का आवरण चढ़ा रहता था। शैशव की स्मृति! विलीन
ा!

खंभा खींच कर गिराता चला जाता है

४

कुसुमपुर के सरस्वती मंदिर का उपवन

राक्षस—सुवासिनी ! हठ न करो।

सुवा०—नहीं, उस ब्राह्मण को दण्ड दिये बिना
नहीं सकती अमात्य, तुमको करना होगा।
आ रही थी उसने व्यंग किया और वह बड़ा कठोर था—
उसने कहा—वेश्याओं के लिये भी धर्म
उपयुक्त ही हुआ। ऐसे धर्म को अनुगत पतितों का भ

राक्षस—यह उसका अन्याय था।

सुवा०—परंतु अन्याय का प्रतिकार भी है। नहीं तो मैं
मूँगी कि तुम भी वैसे ही एक कठोर ब्राह्मण हो।

राक्षस—मैं वैसा हूँ कि नहीं, यह पीछे मालूम होगा।
सुवासिनी, मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ,
उसकी दार्शनिक सीमा तक—इतना ही कि संसार दुःखमय

सुवा०—इसके बाद ?

राक्षस—मैं इस क्षणिक जीवन की घड़ियों
का पक्षपाती हूँ। और तुम जानती हो कि मैंने ब्याह
परन्तु भिक्षु भी न बन सका।

सुवा०—तब आज से मेरे कारण तुमको राजचक्र में
का समर्थन करना होगा।

राक्षस—मैं प्रस्तुत हूँ।

सुवा०—फिर तो मैं तुम्हारी हूँ। मुझे विश्वास है कि दुरा-
सदाचार के द्वारा शुद्ध हो सकता है और बौद्धमत इसका
न-करता है, सबको शरण देता है। हम दोनो उपासक होकर
बनेंगे। मै इसके लिये नन्द से अनुरोध नहीं किया चाहती।
राक्षस—इतना बड़ा सुख-स्वप्न का जाल आँखो मे न फैलाओ।
सुवा०—नहीं प्रिय! मैं तुम्हारी अनुचरी हूँ। मैं नन्द की
स-लीला का क्षुद्र उपकरण नही रहा चाहती।

जाती है।

राक्षस—एक परदा उठ रहा है या गिर रहा है, समझ मे नहीं
—(आँख मीच कर)—सुवासिनी! कुसुमपुर का स्वर्गीय
! मैं हस्तगत कर लूँ? नहीं, राजकोप होगा! परन्तु जीवन
है। सुवासिनी! मेरी विद्या, मेरा परिष्कृत विचार सब व्यर्थ
सुवासिनी एक लालसा है, एक प्यास है। वह अमृत है, उसे
के लिये सौ बार मरूँगा।

नेपथ्य से—हटो मार्ग छोड़ दो!

राक्षस—कोई राजकुल की सवारी है क्या? तो चलूँ।

जाता है।

सखियों के साथ शिविका पर राजकुमारी कल्याणी का प्रवेश—

कल्याणी—(शिविका से उतरती हुई, लीला से—)—शिविका
न के बाहर ले जाने के लिये कहो और रक्षी लोग भी वहीं

शिविका लेकर रक्षक जाते हैं

लीला—परन्तु इसका उपाय क्या है ? देख लीला, वे दो कौन
आ रहे हैं। चल, हम लोग छिप जायँ।

सब कुञ्ज में चली जाती हैं, दो ब्रह्मचारियों का प्रवेश—

एक ब्रह्म०—धर्म्मपालित, मगध को उन्माद हो गया है। वह
साधारण के अधिकार अत्याचारियों के हाथ में देकर विलासिता
का स्वप्न देख रहा है। तुम तो गये नहीं, मैं अभी उत्तरापथ से आ
रहा हूँ। गणतन्त्रों में सब प्रजा वन्यवीरुध के समान स्वच्छन्द फल-
फूल रही है। इधर उन्मत्त मगध, साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है।
दूसरा—स्नातक, तुम ठीक कह रहे हो। महापद्म का जारज पुत्र नन्द
शस्त्र-बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के शिर पर ताण्डव
नृत्य कर रहा है। वह सिद्धान्त-विहीन नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती,
कभी वैदिकों का अनुयायी बन कर दोनों में भेदनीति चला कर बल-
संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है।
तुम देश-विदेश देखकर आये हो, आज मेरे घर पर तुम्हारा निम-
न्त्रण है; वहाँ सबको तुम्हारी यात्राका विवरण सुननेका अवसर मिलेगा।
पहिला—चलो।

दोनों जाते हैं, कल्याणी बाहर आती है।

कल्याणी—सुन कर हृदय की गति रुकने लगती है। इतना
पतित राजपद !—जिसे साधारण नागरिक भी घृणा की दृष्टि
से देखता है—कितने मूल्य का है लीला ?

नेपथ्य से—भागो भागो ! यह राजा का अहेरी चीता पींजड़े से
निकल भागा है, भागो भागो !

मगध में नन्द की राज-सभा

राक्षस और सभासदों के साथ नन्द

नन्द—हाँ, तब ?

राक्षस—दूत लौट आये और उन्होंने कहा है कि पंचनद-
...को यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं।

नन्द—क्यों ?

राक्षस—प्राच्य देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या से परिणय नहीं कर सकते।

नन्द—इतना गर्व !

राक्षस—यह उसका गर्व नहीं, यह धर्म्म का दम्भ है, व्यंग

...रम भट्टारक की जय हो, मैं इसका फल चखा दूँगा। मगध-
...से शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान करके कोई यों ही नहीं बच
...येगा। ब्राह्मणों का यह .....

प्रतिहार का प्रवेश—

प्रतिहार—जय हो देव, मगध से शिक्षा के लिए गये हुए
...शिला के स्नातक आये हैं।

नन्द—लिवा लाओ।

दौवारिक का प्रस्थान, चंद्रगुप्त के साथ कई स्नातकों का प्रवेश—

स्नातक—राजाधिराज की जय हो !

नन्द—स्वागत। अमात्य, वररुचि अभी नहीं आये, देखो तो।

प्रतिहारी का प्रस्थान और वररुचि के साथ प्रवेश—

चाणक्य—वह तो रहेगा ही। जिस दिन उसका अंत होगा सी दिन आर्य्यावर्त्त का ध्वंस होगा। यदि अमात्य ने ब्राह्मण-नाश रने का विचार किया हो तो जन्म-भूमि की भलाई के लिये सका त्याग कर दें। क्योकि राष्ट्र का शुभ-चिंतन केवल कर्म्म-दी संयमी ब्राह्मण ही कर सकते हैं। एक जीव की हत्या से रने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मँडराने वाली विपत्तियो से, रक्त मुद्र की आँधियो से, आर्य्यावर्त्त की रक्षा करने मे असमर्थ माणित होंगे।

नन्द—ब्राह्मण! तुम बोलना नहीं जानते हो तो चुप रहना सीखो।

चाणक्य—महाराज, उसे सीखने के लिये मैं तक्षशिला गया ा और मगध का सिर ऊँचा करके उसी गुरुकुल मे मैंने अध्यापन ा कार्य्य भी किया है। इस लिये मेरा हृदय यह नहीं मान सकता कि मैं मूर्ख हूँ।

नन्द—तुम चुप रहो।

चाणक्य—एक बात कह कर महाराज!

राक्षस—क्या?

चाणक्य—यवनो की विकट वाहिनी निषध पर्वत माला तक पहुँच गई है। तक्षशिलाधीश की भी उसमें अभिसंधि है। संभवतः समस्त आर्य्यावर्त्त पादाक्रांत होगा। उत्तरापथ में बहुत से छोटे छोटे गणतंत्र हैं, वे उस सम्मिलित पारसीक यवन बल को रोकने में असमर्थ होंगे। अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इस लिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिये।

नन्द—क्या उसी विद्रोही ब्राह्मण की संतान! निकालो इसे अभी यहाँ से!

प्रतिहारी आगे बढ़ता है, चंद्रगुप्त सामने आकर उसे रोकता है।

चंद्र०—सम्राट, मै प्रार्थना करता हूं कि मेरे सामने गुरुदेव का अपमान न किया जाय! मैं भी उत्तरापथ से आ रहा हूँ। आर्य्य चाणक्य ने जो कुछ कहा है वह साम्राज्य के हित की बात है। उस पर विचार किया जाय।

नन्द—कौन? सेनापति मौर्य्य का कुमार चद्रगुप्त!

चंद्र०—हाँ देव, मै युद्ध-नीति सीखने के लिये ही तक्षशिला भेजा गया था। मैंने अपनी आँखों गान्धार का उपप्लव देखा है, मुझे गुरुदेव के मत मे पूर्ण विश्वास है। यह आगन्तुक आपत्ति पंचनद प्रदेश तक ही न रह जायगी।

नन्द—अबोध युवक, तो क्या इसी लिये अपमानित होने पर भी मैं पर्वतेश्वर की सहायता करूँ! असम्भव है। तुम राजाज्ञाओं में बाधा न देकर शिष्टता सीखो। प्रतिहारी, निकालो इस ब्राह्मण को! यह बडा ही कुचक्री मालूम पड़ता है!

चंद्र०—राजाधिराज, ऐसा करके आप एक भारी अन्याय करेंगे और मगध के शुभचिन्तकों को शत्रु बनावेंगे।

राजकुमारी—पिताजी, चंद्रगुप्त पर ही दया कीजिये। एक बात उसकी भी मान लीजिये।

नन्द—चुप रहो, ऐसे उद्दंड को मैं कभी नहीं क्षमा करता। और सुनो चंद्रगुप्त, तुम भी यदि इच्छा हो तो इसी ब्राह्मण

६

सिन्धु तट—अलका और मालविका

मालविका—राजकुमारी! मैं देख आई, उद्भाण्ड में सिंधु सेतु बन रहा है। युवराज स्वयं उसका निरीक्षण करते हैं : मैंने उक्त सेतु का एक मानचित्र भी प्रस्तुत किया था। कुछ रा-सा रह गया है पर इसके देखने से कुछ आभास मिल गा।

अलका—सखी! बड़ा दुःख होता है जब मै यह स्मरण ती हूँ कि स्वयं महाराज का इसमे हाथ है। देखूँ तेरा मानचित्र!

(मालविका मानचित्र देती है, अलका उसे देखने लगती है; एक न सैनिक का प्रवेश—वह मानचित्र अलका से लेना चाहता है।)

अलका—दूर हो दुर्विनीत दस्यु!—(मानचित्र अपनी चुकी में छिपा लेती है।)

यवन—यह गुप्तचर है, मैं इसे पहचानता हूँ। परन्तु सुन्दरी! म कौन हो जो इसकी सहायता कर रही हो? अच्छा हो कि झे मानचित्र मिल जाय और मैं इसे सप्रमाण वन्दी बना कर हाराज के सामने ले जाऊँ।

अलका—यह असंभव है। पहले तुम्हें बताना होगा कि तुम हाँ किस अधिकार से यह अत्याचार किया चाहते हो?

यवन—मैं!—मैं देवपुत्र-विजेता अलक्षेन्द्र का नियुक्त अनुचर हूँ और तक्षशिला की मित्रता का साक्षी हूँ। यह अधिकार मुझे गांधार-नरेश ने दिया है।

यह कर्तव्य था कि मैं उस मानचित्र को किसी भी पुरुष के
में होने से उसे जैसे बनता ले ही लेता।

सिंहरण—तुम बड़े प्रगल्भ हो यवन! क्या तुम्हें भय नहीं कि
एक दूसरे राज्य में ऐसा आचरण करके अपनी मृत्यु बुला
हो।

यवन—उसे आमन्त्रण देने के लिये ही उतनी दूर से
या हूँ।

सिंहरण—राजकुमारी! वह मानचित्र मुझे देकर आप निरा-
हो जायँ, फिर मैं देख लूँगा।

अलका—(मानचित्र देती हुई)—तुम्हारे ही लिये तो यह
ाया गया था।

सिंहरण—(उसे रखते हुए)—ठीक है, मैं रुका भी इसी लिये
।—(यवन से)—हाँ जी, कहो अब तुम्हारी क्या इच्छा है?

यवन—मानचित्र मुझे दे दो या प्राण देना होगा।

सिंहरण—उसके अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा। तो
र सावधान हो जाओ! हाँ पहले तुम्हारा आक्रमण हो।

(तलवार खींचता है।)

यवन के साथ युद्ध—सिंहरण घायल होता है, परन्तु यवन को
के भीषण प्रत्याक्रमण से भय होता है, वह भाग निकलता है।

अलका—वीर! यद्यपि तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है, परन्तु
वस्था बड़ी भयानक है। वह जाकर कुछ उत्पात मचावेगा,
ताजी पूर्णरूप से यवनों के हाथ में आत्म-समर्पण कर चुके हैं।

सैनिक—मैं नहीं कर सकता।

यवन—क्यों, गान्धार नरेश ने तुम्हे क्या आज्ञा दी है ?

सैनिक—यही कि, आप जिसे कहे उसे हमलोग वन्दी करके
राज के पास ले चले।

यवन—फिर विलम्ब क्यों ?

मलका संकेत से वर्जित करती है।

सैनिक—हम लोगों की इच्छा।

यवन—तुम राजविद्रोही हो।

सैनिक—कदापि नहीं, पर यह काम हम लोगों से न हो
गा।

यवन—सावधान ! तुमको इस आज्ञा-भंग का फल भोगना
गा। मैं स्वयं वन्दी वनाता हूँ।

अलका की ओर बढ़ता है, सैनिक तलवार खींच लेते हैं—

यवन—(ठहर कर)—यह क्या !

सैनिक—डरते हो क्या ! कायर ! स्त्रियों पर वीरता दिखाने
बड़े प्रवल हो और एक युवक के सामने से भाग निकले !

यवन—तो क्या, तुम राजकीय आज्ञा का स्वयं न पालन
गे और न करने दोगे ?

सैनिक—यदि साहस हो मरने का तो आगे बढ़ो।

अलका—(सैनिकों से)—ठहरो विवाद करने का समय नहीं
। वन से)—कहो तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

—तुम्हे मैं वंदी करना चाहता हूँ।

चाणक्य—समीर की गति भी अवरुद्ध है, शरीर का फिर
। कहना ! परंतु मन में इतने संकल्प और विकल्प ! एक बार
लने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों मे साम्राज्य
टने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय मे कर्त्तव्य के
ये प्रलय की आँधी चला देने की भी कठोरता है ! जकड़ी हुई
शृंखले ! एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदो-
त्त विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ। क्या रोने
गूँ ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से विलबिलाकर दया की
िक्षा माँगूँ ! माँगूँ कि मुझे भोजन के लिये एक मुट्ठी चने जो
ते हो, न दो, एक बार स्वतंत्र कर दो ! नहीं, चाणक्य ! ऐसा न
रना। नहीं तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो
ानेवाली एक बामी रह जायगा। तब मैं आज से प्रण करता हूँ
क दया किसी से न माँगूँगा, और अधिकार तथा अवसर मिलने
र किसी पर न करूँगा। (ऊपर देख कर)—क्या कभी नहीं ?
ाँ हाँ, कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलयवन्या के समान अबाधगति
ौर कर्त्तव्य में इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।

किवाड़ खुलता है, वररुचि और राक्षस का प्रवेश—

राक्षस—स्नातक ! अच्छे तो हो ?

चाणक्य—बुरे कब थे बौद्ध अमात्य !

राक्षस—आज हम लोग एक काम से आये हैं। आशा है कि

स्पष्ट उत्तर दो। तुम तक्षशिला मे मगध के गुप्त प्रणिधि बन
जाया चाहते हो या मृत्यु चाहते हो? तुम्ही पर विश्वास
के क्यो भेजना चाहता हूँ, यह तुम्हारी स्वीकृति मिलने पर
ऊँगा।

चाणक्य—जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा
लिये नही। और सुनो, पर्व्वतेश्वर का नाश करने के लिये तो
ापि नही।

राक्षस—यथेष्ट है, और कहने की आवश्यकता नही।

वररुचि—विष्णुगुप्त! मेरा वार्त्तिक अधूरा रह जायगा। मान
ओ। तुमको पाणिनि के कुछ प्रयोगो का पता भी लगाना
गा जो उस शालातुरीय वैयाकरण ने लिखे है। फिर से एक
र तक्षशिला जाने पर ही उनका—

चाणक्य—मेरे पास पाणिनि में सिर खपाने का समय नहीं।
ापा ठीक करने के पहले मैं मनुष्यो को ठीक करना चाहता हूँ,
मझे।

वररुचि—जिसने 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्र लिखा है वह
वल वैयाकरण ही नहीं, दार्शनिक भी था। उसकी अवहेला!

चाणक्य—यह मेरी समझ मे नही आता, मै कुत्ता, साधा-
ण युवक और इन्द्र को कभी एक सूत्र मे नही बाँध सकता। कुत्ता,
त्ता ही रहेगा; इन्द्र, इन्द्र। सुनो वररुचि! मै कुत्ते को कुत्ता ही
बनाना चाहता हूँ। नीचो के हाथ में इन्द्र का अधिकार चले जाने
से जो सुख होता है उसे मैं भोग रहा हूँ। तुम जाओ।

वररुचि—क्या मुक्ति भी नहीं चाहते ?

चाणक्य—तुम लोगों के हाथ से वह भी नहीं।

राक्षस—अच्छा तो फिर तुम्हें अंधकूप में जाना होगा।

चंद्रगुप्त का रक्तपूर्ण खड्ग लिये सहसा प्रवेश—चाणक्य के बंधन काटता है राक्षस प्रहरियों को बुलाना चाहता है—

चंद्रगुप्त—चुप रहो अमात्य ! शवों म बोलने की शक्ति नहीं, तुम्हारे प्रहरी जीवित नहीं रहे।

चाणक्य—मेरे शिष्य ! वत्स चंद्रगुप्त !

चंद्रगुप्त—चलिये गुरुदेव !—(खड्ग उठा कर राक्षस से) तुमने कुछ भी कोलाहल किया तो (राक्षस बैठ जाता है, गिर पड़ता है। चंद्रगुप्त चाणक्य को लिये निकलता हुआ किवाड़ बंद कर देता है।)

८

गान्धार-नरेश का प्रकोष्ठ

चिन्तायुक्त प्रवेश करते हुए राजा

ाजा—बूढ़ा हो चला, परंतु मन बूढ़ा न हुआ। बहुत दिनो ृष्णा को तृप्त करता रहा, पर तृप्त नही होती। आम्भीक तो युवक है, उसके मन मे महत्त्वाकांक्षा का होना अनिवार्य्य सका पथ कुटिल है, गन्धर्व नगर की-सी सफलता उसे अपने दौड़ा रही है।—(विचार कर)—हाँ ठीक तो नहीं है, पर ते के शिखर पर नाक के सीधे चढ़ने मे बड़ी कठिनता है— कर)—रोक दूँ। अब से भी अच्छा है, जब वे घुस आवेंगे ो गान्धार को भी वही कष्ट भोगना पड़ेगा जिसे हम दूसरो ना चाहते हैं।

अलका के साथ यवन और रक्षकों का प्रवेश—

राजा—बेटी! अलका!

अलका—हाँ महाराज, अलका।

राजा—नहीं, कहो—हाँ पिताजी। अलका, कब तक तुम्हे खाऊँ!

अलका—नहीं महाराज!

राजा—फिर महाराज! पागल लड़की कह, पिताजी!

अलका—वह कैसे महाराज! न्यायाधिकरण पिता सम्बोधन पक्षपाती हो जायगा।

राजा—यह क्या!

जा—क्यों अलका ! यह बात सही है ?

लका—सत्य है। महाराज ! जिस उन्नति की आशा मे ोक ने यह नीच कर्म्म किया है उसका पहला फल यह है कि मैं वन्दिनी हूँ, सम्भव है कल आप होगे ! और परसो : की जनता बेगार करेगी, श्रमजीवी बनेगी ! उनका मुखिया आपका वंश-उज्ज्वलकारी आम्भीक !

यवन—संधि के अनुसार देवपुत्र का साम्राज्य और गांधार राज्य है, यह व्यर्थ की बात है।

आम्भीक—सिल्यूकस ! तुम विश्राम करो। हम इसको फ कर तुमसे मिलते हैं।

यवन का प्रस्थान, रक्षकों का दूसरी ओर जाना

राजा—परन्तु आम्भीक ! राजकुमारी वंदिनी बनाई जाय, वह मेरे ही सामने ! उसके लिये एक यवन दण्ड की व्यवस्था करे, तो तुम्हारे उद्योगो का फल है !

अलका—महाराज ! मुझे दण्ड दीजिये, कारागार मे ये, नहीं तो मै मुक्त होने पर भी यही करूँगी। कुलपुत्रो के रक्त आर्य्यावर्त्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बन कर जननी जन्मभूमि नी सन्तान को खायगी। महाराज ! आर्य्यावर्त्त के सब बच्चे भीक-जैसे नहीं होगे। वे इसको मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के ये तिल-तिल कट जायँगे। स्मरण रहे, यवनों की विजयवाहिनी आक्रमण को प्रत्यावर्त्तन बनानेवाले यही भारत-संतान होगे। बचे हुए क्षतांग वीर, गांधार को—भारत के द्वार-रक्षक को—

लका—करूँगी महाराज, अवश्य करूँगी !

जा—फिर मैं पागल हो जाऊँगा ! मुझे तो विश्वास नहीं होता।

ाम्भीक—और तब अलका, मैं अपने हाथो से तुम्हारी

करूँगा !

ाजा—नहीं आम्भीक ! तुम चुप रहो। सावधान ! अलका

ोर पर जो हाथ उठाना चाहता हो उसे मैं द्वन्द्व-युद्ध के लिये

रता हूँ।

आम्भीक सिर नीचा कर लेता है

लका—तो मै जाती हूँ पिताजी !

ाजा—(अन्यमनस्क भाव से सोचता हुआ)—जाओ।

(अलका चली जाती है।)

ाजा—आम्भीक !

आम्भीक—पिताजी !

ाजा—लौट आओ।

आम्भीक—इस अवस्था मे तो मैं लौट आता परन्तु वे यवन-

क छाती पर खड़े हैं। पुल बँध चुका है। नहीं तो पहले

र का ही नाश होगा।

राजा—तब ?—(निश्वास लेकर)—जो होना हो सो हो। पर

बात आम्भीक, आज से मुझसे कुछ न कहना। जो उचित

झो, करो। मैं अलका को खोजने जाता हूँ। गांधार जाने और

जानो।

वेग से प्रस्थान

पात्र देख कर उसका संस्कार करने का अधिकार है।
त्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा
ा, पुष्टि के लिये और सेवा के लिये इतर वर्णों का संघटन
गा। राजन्य संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्धाभिषिक्त बनाने
ही क्या है?

र्वतेश्वर—(हँस कर)—यह आपका सुविचार नहीं है
!

ाणक्य—वशिष्ठ का ब्राह्मणत्त्व जब पीड़ित हुआ था, तब
दरद, काम्बोज आदि क्षत्रिय बने थे। राजन्, यह कोई
त नहीं है।

र्वतेश्वर—वह समर्थ ऋषियों की बात है।

ाणक्य—भविष्य इसका विचार करता है कि ऋषि किन्हें
हैं। क्षत्रियाभिमानी पौरव! तुम इसके निर्णायक नहीं
कते।

र्वतेश्वर—शूद्र-शासित राष्ट्र में रहनेवाले ब्राह्मण के मुख से
ात शोभा नहीं देती।

ाणक्य—तभी तो ब्राह्मण मगध को क्षत्रिय-शासन में ले
चाहता है। पौरव! जिसके लिये कहा गया है कि क्षत्रिय-
त्र धारण करने पर आर्त्तवाणी नहीं सुनाई पड़नी चाहिये,
चंद्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय दिखाई देगा।

र्वतेश्वर—कल्पना है।

ाणक्य—प्रत्यक्ष होगी। और स्मरण रखना, आसन्न यवन

१०

कानन में अलका

अलका—चली जा रही हूँ। अनन्त पथ है, कहीं पान्थशाला नहीं और न तो पहुँचने का निर्दिष्ट स्थान है। शैल पर से गिरा ई स्रोतस्विनी के सदृश अविराम भ्रमण, ठोकरें और गार! कानन में कहाँ चली जा रही हूँ?—(सामने देख कर)— यवन!!

शिकारी के वेश में सिल्यूकस का प्रवेश—

सिल्यूकस—तुम कहाँ सुंदरी राजकुमारी!

अलका—मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं। फिर मैं कहाँ जाऊँगी यवन!

सिल्यूकस—यहाँ तो तुम अकेली हो सुंदरी!

अलका—सो तो ठीक है।—(दूसरी ओर देख कर सहसा)— देखो वह एक सिंह आ रहा है!

सिल्यूकस उधर देखता है, अलका दूसरी ओर निकल जाती है

सिल्यूकस—निकल गई!—(दूसरी ओर जाता है)

चाणक्य और चन्द्रगुप्त का प्रवेश—

चाणक्य—वत्स, तुम बहुत थक गये होगे।

चंद्रगुप्त—आर्य्य! नसों ने अपने बंधन ढीले कर दिये हैं, शरीर अवसन्न हो रहा है, प्यास भी लगी है।

चाणक्य—हाँ, मै इस राजकुमार का गुरु हूँ, शिक्षक हूँ। ने गुरु का दर्शन कराने जा रहा हूँ।

सिल्यूकस— कहाँ निवास है ?

चाणक्य—यह चंद्रगुप्त मगध का एक निर्वासित राज-
ार है।

सिल्यूकस—(कुछ विचारता है)—अच्छा अभी तो मेरे
ेर मे चलो, विश्राम करके फिर कही जाना।

चंद्रगुप्त—यह सिह कैसे मरा ? ओह, प्यास से मैं हतचेत
ाया था—आपने मेरे प्राणो की रक्षा की, मैं कृतज्ञ हूँ। आज्ञा
िये, हम लोग गुरुदेव के दर्शन करके फिर उपस्थित होगे;
चय जानिये।

सिल्यूकस—जब तुम अचेत पड़े थे तब यह तुम्हारे पास
था। मैंने विपद समझ कर इसे मार डाला। मैं यवन-
ापति हूँ।

चद्रगुप्त—धन्यवाद ! भारतीय कृतघ्न नहीं होते। सेनापति ! मैं
पका अनुगृहीत हूँ, अवश्य आपके पास आऊँगा।

(तीनों जाते हैं, अलका का प्रवेश—)

अलका—आर्य्य चाणक्य और चंद्रगुप्त—ये भी यवनो के
ी ! जब आँधी और करका-वृष्टि, अवर्षण और दावाग्नि का
ोप हो, तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन है ? शून्य
ास प्रश्न को बिना उत्तर दिये लौटा देता है। ऐसे लोग भी
क्रमणकारियो के चंगुल मे फँस रहे हों तब रक्षा की क्या

११

सिन्धु तट पर दाण्ड्यायन का आश्रम

दाण्ड्यायन—पवन एक क्षण विश्राम नहीं लेता, सिन्धु की धारा बही जा रही है, बादलों के नीचे पक्षियों का झुण्ड जा रहा है, प्रत्येक परमाणु न जाने किस आकर्षण मे खिंचे जा रहे हैं। ये सब और कुछ नहीं, केवल काल अनेक रूप ल रहा है—यही तो.. ..

एनिसाक्रटीज का प्रवेश—

एनि०—महात्मन् !

दाण्ड्या०—चुप रहो, सब चले जा रहे हैं तुम भी चले ो। अवकाश नहीं, अवसर नहीं।

एनि०—आप से कुछ .....

दाण्ड्या०—मुझसे कुछ मत कहो। कहो तो अपने आप ही , जिसे आवश्यकता होगी सुन लेगा। देखते हो, कोई किसी सुनता है। मै कहता हूँ—सिंधु के एक विंदु ! धारा मे न वह मेरी बात सुनने के लिये ठहर जा—वह सुनता है ? ठहरता कदापि नहीं।

एनि०—समझने की बात है पर समझ मे नहीं आती। परन्तु पुत्र ने......

दाण्ड्या०—देवपुत्र कौन ?

एनि०—देवपुत्र जगद्विजेता सिकंदर ने आपको स्मरण किया

शनि०—बड़े निर्भीक हो ब्राह्मण! जाता हूँ, यही कह
।—(प्रस्थान)

क ओर से अलका, दूसरी ओर से चाणक्य और चन्द्रगुप्त का
—सब वंदना करके सविनय बैठते हैं।

अलका—देव! मैं गांधार छोड़ कर जाती हूँ।

ाण्ड्यायन—क्यों अलके, तुम गांधार की लक्ष्मी हो,
क्यो?

अलका—ऋषे! यवनो के हाथ स्वाधीनता बेच कर उनके
से जीने की शक्ति मुझमें नहीं।

दाण्ड्यायन—तुम उत्तरापथ की लक्ष्मी हो, तुम अपना प्राण
कर कहाँ जाओगी?—(कुछ विचार कर)—अच्छा जाओ
! तुम्हारी आवश्यकता है। मंगलमय विभु अनेक
ालों में कौन कौन कल्याण छिपाये रहता है, हम सब उसे
समझ सकते। परंतु जब तुम्हारी इच्छा हो निस्संकोच चलो
ा।

अलका—देव, हृदय में एक सदेह है!

दाण्ड्यायन—क्या अलका?

अलका—ये दोनों महाशय जो आपके सम्मुख बैठे हैं—
। पर मेरा पूर्ण विश्वास था वे ही अब यवनों के अनुगत
होना चाहते हैं?

दाण्ड्यायन चाणक्य की ओर देखता है और चाणक्य कुछ विचारने
ा है।

सेकंदर—महात्मन् ! अनुगृहीत हुआ; परंतु मुझे कुछ और
र्वाद चाहिये।

दाण्ड्यायन—मैं और आशीर्वाद देने में असमर्थ हूँ। क्योंकि
के अतिरिक्त जितने आशीर्वाद होंगे वे अमंगलजनक होंगे।

सिकंदर—हम आपके मुख से जय सुनने के अभिलाषी हैं।

दाण्ड्यायन—जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे; हत्या, रक्तपात
अग्निकाण्ड के लिये उपकरण जुटाने में मुझे आनंद नहीं।
तृष्णा का अंत पराभव में होता है, अलक्षेन्द्र ! राजसत्ता
वस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, विजयों से नहीं। इसलिये
प्रजा के कल्याण में लगो।

सेकन्दर—अच्छा—(चन्द्रगुप्त को दिखा कर)—यह तेजस्वी
कौन है?

सेल्यूकस—यह मगध का एक निर्वासित राजकुमार है।

सेकंदर—मैं आपका स्वागत करने के लिये अपने शिविर में
त्रित करता हूँ।

चंद्रगुप्त—अनुगृहीत हुआ। आर्य्य लोग किसी निमंत्रण
स्वीकार नहीं करते।

सेकंदर—(सिल्यूकस से)—तुमसे इनसे कब परिचय हुआ?

सेल्यूकस—इनसे तो मैं पहले ही मिल चुका हूँ।

चंद्रगुप्त—आपका उपकार मैं भूला नहीं हूँ।

सेकंदर—अच्छा, तो आप लोग पूर्व परिचित भी हैं! तब
सेनापति, इनके आतिथ्य का भार आप ही पर रहा।

द्वितीय अङ्क

(ण्ड में सिन्धु के किनारे ग्रीक शिविर के पास वृक्ष के नीचे कार्नेलिया बैठी हुई।

र्नेलिया—सिन्धु का यह मनोहर तट जैसे मेरी आँखों के एक नया चित्र-पट उपस्थित कर रहा है। इस वातावरण धीरे उठती हुई प्रशान्त स्निग्धता जैसे हृदय मे घुस रही है। यात्रा करके, जैसे मैं वहीं पहुँच गई हूँ, जहाँ के लिये चली ह कितना निसर्ग सुन्दर है, कितना रमणीय है। हाँ आज रतीय संगीत का पाठ देखूँ, भूल तो नहीं गई।

वायोलिन लेकर गाती है—

रुण यह मधुमय देश हमारा
हाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
रस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर
टका जीवन हरियाली पर—मंगल कुङ्कुम सारा।
घु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे
ड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
रसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल
लहरें टकराती अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे
मदिर ऊँघते जब रहते—जग कर रजनीभर तारा।

फिलिपस—(प्रवेश करके)—कैसा मधुर गीत है! कार्नेलिया,

स्थान—शैल-पथ

कुछ सैनिकों के साथ सिकंदर

सिकंदर—एनिसाक्रटीज ! यही स्थान है न ?

एनि०—हाँ देवपुत्र ! सिल्यूकस और फिलिपस से भी आने के लिये कह दिया है ।

सैनिकों को संकेत करता है, वे जाते हैं ।

सिकंदर—विजय करने की इच्छा क्लांति से मिलती जा रही है। हम लोग इतने बड़े आक्रमण के समारम्भ मे लगे है और यह देश जैसे सोया हुआ है, लड़ना जैसे इनके जीवन का उद्वेगजनक अंश नहीं । अपने ध्यान मे दार्शनिक के सदृश वे निमग्न हैं। सुनते हैं, पौरव ने केवल झेलम के पास कुछ सेना प्रतिरोध करने के लिये या केवल देखने के लिये रख छोड़ी है । हम लोग जब पार जायँगे तब वे लड़ लेंगे ।

एनि०—मुझे तो ये लोग आलसी मालूम पड़ते है ।

सिकंदर—नहीं नहीं, यहाँ के दार्शनिक की परीक्षा तो तुम कर चुके—दाण्ड्यायन को देखा न ! थोड़ा ठहरो, यहाँ के वीरो का भी परिचय मिल जायगा । यह अद्भुत देश है !

एनि०—परंतु आम्भीक तो अपनी प्रतिज्ञा का सच्चा निकला—प्रबंध तो उसने अच्छा कर रक्खा है ।

सिकंदर—लोभी है । सुना है कि उसकी एक बहन चिढ़ कर संन्यासिनी हो गई है ।

सिल्यूकस तलवार खींचता है ।

सिकंदर—तलवार खींचने से अच्छा होता कि तुम अभियोग नेर्मूल प्रमाणित करने की चेष्टा करते। बतलाओ तुमने ुप्त के लिये अब क्या सोचा ?

सिल्यूकस—उसने अभी-अभी कार्नेलिया को इस नीच ़पस के हाथ से अपमानित होने से बचाया है और मैं यह अभियोग आपके सामने उपस्थित करनेवाला था।

सिकंदर—परंतु साहस नहीं हुआ, क्यों सिल्यूकस !

फिलि०—क्यों साहस होता—इनकी कन्या दाण्ड्यायन के ्रम पर भारतीय दर्शन पढ़ने जाती है, भारतीय संगीत सीखती वहीं पर विद्रोहकारिणी अलका भी आती है ! और, चंद्रगुप्त लिये यह जनरव उठाया गया है कि यही भारत का भावी ्राट् होगा !

सिल्यूकस—रोक, अपनी अबाधगति से चलनेवाली ्भ रोक !

सिकंदर—ठहरो सिल्यूकस ! यहाँ सैनिक न्यायालय है, तुम ्पने को विचाराधीन समझो। हाँ तो चंद्रगुप्त ! मुझे तुमसे कुछ ूछना है।

चंद्रगुप्त—क्या ?

सिकंदर—सुना है कि मगध का वर्तमान शासक एक नीच-न्मा जारज-संतान है। उसकी प्रजा असंतुष्ट है। और तुम उस ाज्य को हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहे हो ?

धिराज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिये ; मै मगध
ा एक विश्वासघाती से उद्धार करना चाहता हूँ। परन्तु यवन
टेरो की सहायता से नहीं।

सिकं०—तुमको अपनी विपत्तियो से डर नही—ग्रीक लुटेरे है !

चंद्र०—क्या यह झूठ है ? लूट के लोभ से हत्या-व्यव-
यियो को एकत्र करके उन्हे वीर-सेना कहना, रण-कला का
हास करना है।

सिकं०—(आश्चर्य्य और क्रोध से)—सिल्यूकस !

चंद्र०—सिल्यूकस नही, चंद्रगुप्त से कहने की बात चंद्रगुप्त
कहनी चाहिये।

आम्भीक—शिष्टता से बातें करो।

चंद्र०—स्वच्छ हृदय भीरु-कायरो की-सी वंचक शिष्टता नहीं
ता। अनार्य्य ! देशद्रोही ! आम्भीक ! चंद्रगुप्त रोटियो की
ाच से या घृणाजनक लोभ से सिकंदर के पास नही आया है।

सिकंदर—बन्दी कर लो इसे !

आम्भीक, फिलिपस, एनिसाक्रीटीज़ टूट पडते हैं, चंद्रगुप्त असाधारण
ा से तीनों को घायल करता हुआ निकल जाता है।

सिकं०—सिल्यूकस !

सिल्यू०—सम्राट् !

सिकं०—यह क्या है ?

सिल्यू०—आपका अविवेक। चन्द्रगुप्त एक वीर युवक है !
। एक कुमारी को अपमानित होते देखकर यवन-शिविर के

झेलम तट का जंगल

चाणक्य, चंद्रगुप्त, और अलका

अलका—आर्य ! अब हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है ?

चाणक्य—पलायन ।

चंद्र०—व्यङ्ग न कीजिये गुरुदेव !

चाणक्य—दूसरा उपाय क्या है ?

अलका—है क्यों नहीं ?

चाणक्य—हो सकता है,—(दूसरी ओर देखने लगता है)

चंद्र०—गुरुदेव !

चाणक्य—परिव्राजक होने की इच्छा है क्या ? यही एक
ा उपाय है ।

चंद्र०—नहीं, कदापि नहीं । यवनों को प्रतिपद में बाधा
मेरा कर्त्तव्य है और शक्ति भर प्रयत्न करूँगा ।

चाणक्य—यह तो बड़ी अच्छी बात है । परन्तु सिंहरण
भी नहीं आया ।

चंद्र०—उसे समाचार मिलना चाहिये ।

चाणक्य—अवश्य मिला होगा ।

अलका—यदि न आ सके ?

चाणक्य—जब काली घटाओं से आकाश घिरा हो, रह रह
र बिजली चमक जाती हो, पवन स्तब्ध हो, उमस बढ़ रही हो,

और आषाढ़ के आरम्भिक दिन हों, तब किस बात की करनी चाहिये ?

अलका—जल बरसने की !

चाणक्य—ठीक उसी प्रकार जब देश में युद्ध हो, मालव को समाचार मिला हो, तब उसके आने की भी आशा है।

चन्द्र०—उधर देखिये—वे दो व्यक्ति कौन आ रहे हैं।

सिंहरण का सहारा लिए वृद्ध गांधारराज का प्रवेश

चाणक्य—राजन !

गांधारराज—विभव की छलनाओं से वंचित एक वृद्ध। पुत्र ने विश्वासघात किया हो और कन्या ने साथ छोड़ा हो—मैं वही, एक अभागा मनुष्य हूँ।

अलका—पिताजी !—(गले से लिपट जाती है।)

गांधार०—बेटी अलका ! तू कहाँ भटक रही है !

अलका—कहीं नहीं पिताजी ! आपके लिये छोटा-सा बना रक्खा है, चलिये विश्राम कीजिये।

गांधार०—नहीं, तू मुझे अबकी झोंपड़ी में बिठाकर जायगी। जो महलों को छोड़ चुकी है, उसका झोंपड़ियों का क्या विश्वास !

अलका—नहीं पिताजी, विश्वास कीजिये। (सिं... मालव ! मैं कृतज्ञ हुई।

सिंहरण सस्मित नमस्कार करता है। पिता के साथ अलका का

चाणक्य—सिंहरण ! तुम आ गये, परंतु .....

सिंह०—'परंतु' नहीं आर्य्य ! आप आज्ञा दीजिये हम कर्त्तव्य में लग जायँ ! विपत्तियों के बादल [illegible] ।

चाणक्य—उसकी चिन्ता नहीं । पौधे अंधकार में बढ़ते हैं, मेरी नीति-लता भी उसी भाँति विपत्ति-तम में बढ़ेगी । हाँ, केवल शौर्य्य से काम नहीं चलेगा । एक बात [illegible] चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों । बोलो—लोग प्रस्तुत हो ?

सिंह०—हम लोग प्रस्तुत हैं ।

चाणक्य—तो युद्ध नहीं करना होगा ।

चंद्र०—फिर क्या ?

चाणक्य—सिंहरण और अलका को नट और नटी बनना [illegible]ा, चंद्रगुप्त बनेगा सँपेरा और मैं ब्रह्मचारी । देख रहे हो [illegible]गुप्त, पर्वतेश्वर की सेना में जो एक गुल्म अपनी छावनी [illegible]ग डाले है, वे सैनिक कहाँ के हैं ?

चंद्र०—नहीं जानता ।

चाणक्य—अभी जानने की आवश्यकता भी नहीं । ह[illegible]म उसी सेना के साथ अपने स्वांग रखेंगे । वहीं हमारे खे[illegible]गे । चलो हम लोग चलें, देखो—वह नवीन गुल्म का युव[illegible] नापति जा रहा है ।

सबका प्रस्थान

कल्याणी—मागध गुल्म का महाराज।

पर्व०—मगध की सेना, असम्भव! उसने तो रण-निमंत्रण प्रत्याख्यान किया था।

कल्याणी—परन्तु मगध की बड़ी सेना मे से एक छोटा-सा युवकों का दल इस युद्ध के लिये परम उत्साहित था। स्वेच्छा से उसने इस युद्ध मे योग दिया है।

पर्व०—प्राच्य मनुष्यों मे भी इतना उत्साह!—

(हँसता है)

कल्याणी—महाराज, उत्साह का निवास किसी विशेष दिशा में नहीं है।

पर्व०—(हँस कर)—प्रगल्भ हो युवक, परन्तु रण जब होने लगता है तब भी यदि तुम्हारा उत्साह बना रहे तो मानूँगा। तुम बड़े सुन्दर सुकुमार युवक हो, इसलिये साहस न कर बैठना। तुम मेरी रक्षित सेना के साथ रहो तो अच्छा। समझा न!

कल्याणी—जैसी आज्ञा।

चंद्रगुप्त, सिंहरण और अलका का वेश बदले हुए प्रवेश

सिंह०—खेल देख लो खेल! ऐसा खेल—जो कभी न देखा न सुना!

पर्व०—नट! इस समय खेल देखने का अवकाश नहीं।

अलका—क्या युद्ध के पहले ही घबरा गये, सैनिक! वह भी वीरों का खेल ही है!

पर्व०—बड़ी ढीठ है!

चद्र०—न हो तो नागों का ही दर्शन कर लो।

कल्याणी—बड़ा कौतुक है महाराज, इन नागों को किस प्रकार वश कर लेते हैं?

चद्र०—(सम्भ्रम से)—महाराज हैं। तब तो कुछ प्कार मिलेगा।

सँपेरों की-सी चेष्टा करता है पिटारी खोल कर साँप निकालता है।

कल्याणी—आश्चर्य्य है, मनुष्य ऐसे कुटिल विषधर को वश कर सकता है, परन्तु मनुष्य को नहीं।

पर्व०—नट, नागों पर तुम लोगों का अधिकार कैसे जाता है?

चद्र०—मन्त्र महोषधि के भाले से बड़े बड़े मत्त भूत होते हैं।

पर्व०—भाले से?

सिंह०—हाँ महाराज। वैसे ही जैसे भाला ल

कल्याणी—पिटारी बन्द करो।

पर्व०—तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?

सिंह०—ग्रीकों के शिविर से।

चन्द्र०—उनके भाले भारतीय हाथियों के लिये वज्र हैं।

पर्व०—तुम लोग आम्भीक के चर तो नहीं हो?

सिंह०—रातोरात यवनसेना वितस्ता के पार हो गई है समीप है, महाराज। सचेत हो जाइये।

पर्व०—मागध नायक! इन लोगों को बन्दी करो।

रहा है कि तुम्हारे निर्वासन के भीतरी कारणों मे एक मैं हूँ !

चंद्र०—परंतु राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से कुल है। इस ज्वाला मे स्मृतिलता मुरझा गयी है।

कल्याणी—चंद्रगुप्त ! चंद्रगुप्त !!

चंद्र०—राजकुमारी ! समय नही। देखो—वह भारतीयों तिकूल दैव ने मेघमाला का सृजन किया है। रथ बेकार होंगे हाथियों का प्रत्यावर्त्तन और भी भयानक हो रहा है।

कल्याणी—तब ! मगध-सेना तुम्हारे अधीन है; जैसा चाहो।
।

चंद्र०—पहले ही उस पहाड़ी पर सेना एकत्र होनी चाहिये। आवश्यकता होगी। पर्व्वतेश्वर की पराजय को रोकने की कर देखूँ।

कल्याणी—चलो !

मेघों की गड़गड़ाहट

दोनों जाते हैं

ओर से सिल्यूकस दूसरी ओर से पर्व्वतेश्वर का ससैन्य प्रवेश युद्ध

सिल्यू०—पर्व्वतेश्वर ! अस्त्र रख दो !

पर्व्व०—यवन ! सावधान ! बचाओ अपने को !

तुमुल युद्ध घायल होकर सिल्यूकस का हटना

पर्व्व०—सेनापति ! देखो, उन कायरों को रोको। उनसे कह कि आज रणभूमि में पर्व्वतेश्वर पर्व्वत के समान अचल है।

पहुँचना, दूसरी ओर से सिकदर का आना। युद्ध वंद करने के सिकंदर की आज्ञा

चंद्र०—युद्ध होगा !

सिकं०—कौन, चंद्रगुप्त !

चंद्र०—हाँ सिकंदरशाह !

युवंक—किससे युद्ध ! मुमूर्षु घायल पर्व्वतेश्वर—वार पर्व्व-र से कदापि नहीं। आज मुझे जय-पराजय का विचार नहीं मैंने एक अलौकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य देखा है—होमर कविता में पढ़ी हुई जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है, उसे त्त देखा ! एचिलीज और हरक्यूलिस का वर्णन कपोल-पत कविता नहीं। भारतीय वीर पर्व्वतेश्वर ! अव मैं ारे साथ कैसा व्यवहार करूँ ? ४

पर्व्व०—(रक्त पोंछते हुए)—जैसा एक नरपति अन्य नरपति साथ करता है, सिकंदर !

सिकं०—धन्य वीर ! मे तुमसे मैत्री किया चाहता हूँ। मय विमुग्ध होकर तुम्हारी सराहना किये विना मैं नहीं रह ता – धन्य ! आर्य्य वीर !

पर्व्व०—मैं तुमसे युद्ध न करके मैत्री भी कर सकता हूँ।

चंद्र०—पचनद नरेश ! आप क्या कर रहे हैं ! समस्त ाध सेना आपकी प्रतीक्षा मे है, युद्ध होने दीजिये !

कल्याणी—इन थोड़े से अर्धजीव यवनों को विचलित करने लिये पर्य्याप्त मागध सेना है। महाराज ! आज्ञा दीजिये।

५

...र नगर के प्रांत में रावी के तट पर निहृय के उद्यान का एक अंश

मालविका—(प्रवेश करके)—फूल हँसते हुए आते हैं, फिर ...रंद गिरा कर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी को भिगो कर ...ले जाते है। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निश्वास ...क कर चला जाता है। क्या पृथ्वी तल रोने ही के लिये है? ...हीं, सबके लिये एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिये है ...कोई हँसने के लिये—(विचारती हुई)—आजकल तो छुट्टी-...है परन्तु एक विचित्र दल विदेशियों का यहाँ ठहरा है, उनमें ...एक को तो देखते ही डर लगता है। लो देखो—वह युवक आ ...या।

सिर झुका कर फूल सँवारने लगती है, ऐन्द्रजालिक के वेश में चंद्रगुप्त का प्रवेश

चंद्र०—मालविका!

माल०—क्या आज्ञा है?

चंद्र०—तुम्हारे नागकेसर की क्यारी कैसी है?

माल०—हरी भरी!

चंद्र०—आज कुछ खेल भी होगा, देखोगी?

माल०—खेल तो नित्य ही देखती हूँ। न जाने कहाँ से लोग आते हैं, और कुछ न कुछ अभिनय करते हुए चले जाते हैं। इसी उद्यान के कोने से, बैठी हुई सब देखा करती हूँ।

चंद्र०—मालविका, तुमको कुछ गाना आता है?

द्र०—उनकी उत्तेजना से सैनिकों ने विपाशा को पार
अस्वीकार कर दिया और यवन, देश फिर चलने के लिये
करने लगे। सिकन्दर के बहुत अनुरोध करने पर भी वे
के लिये सहमत नहीं हुए। इस लिये रावी के जलमार्ग से
का निश्चय हुआ है। अब उनकी इच्छा युद्ध की नहीं है।

चाणक्य—और क्षुद्रकों का क्या समाचार है?

चंद्र०—वे भी प्रस्तुत हैं। मेरे सेनापतित्व में वे युद्ध के
प्रसन्न हैं। मेरी इच्छा है कि इस जगद्विजेता का ढोंग करने
को एक पाठ पराजय का भी पढ़ा दिया जाय। परन्तु इस
यहाँ सिंहरण का होना अत्यन्त आवश्यक है।

चाणक्य—अच्छा देखा जायगा। कुलपुत्र लोग स्कन्धावार
ओर जा रहे हैं। संभवतः स्कन्धावार में मालवों की युद्ध-परिषद्
। अत्यंत सावधानी से काम करना होगा। मालवों को
ने का पूरा प्रयत्न तो हमने कर लिया है।

चंद्र०—चलिये मैं अभी आया।

चाणक्य का प्रस्थान

माल०—यह खेल तो बड़ा भयानक होगा मागध।

चंद्र०—कुछ चिन्ता नहीं। अभी कल्याणी नहीं आई।

एक सैनिक का प्रवेश—

चंद्र०—क्या है?

सैनिक—सेनापति! मगध-सेना के लिए क्या आज्ञा है?

चंद्र०—विपाशा और शतद्रु के बीच जहाँ अत्यन्त संकीर्ण

चंद्र०—तो क्या तुम इस देश की नहीं हो ?

माल०—नहीं, मैं सिन्धु की रहनेवाली हूँ आर्य्य! वहाँ युद्ध-
गृह नहीं, न्यायालयों की आवश्यकता नहीं। प्रचुर स्वर्ण के
रहते भी कोई उसका उपयोग नहीं। इसलिये अर्थमूलक विवाद
भी उठता ही नहीं। मनुष्य के प्राकृतिक जीवन का सुन्दर
पालना मेरा सिन्धु देश है।

चन्द्र०—तो यहाँ क्यों चली आई हो ?

माल०—मेरी इच्छा हुई, कि और देशों को भी देखूँ।
तक्षशिला में राजकुमारी अलका से कुछ ऐसा स्नेह हुआ कि
वहीं रहने लगी। उन्होंने मुझे घायल सिंहरण के साथ यहाँ
भेज दिया। कुमार सिंहरण बड़े सहृदय हैं। परन्तु मागध, तुमको
देख कर तो मैं चकित हो जाती हूँ! कभी इन्द्रजाली कभी कुछ!
भला इतना सुन्दर रूप तुम्हें विकृत करने की क्या आवश्य-
कता है ?

चंद्र०—शुभे, मैं तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ। तुम इन बातों
को पूछ कर क्या करोगी ?

माल०—स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है, परन्तु बिछलने
का भय भी होता है।—(स्वगत)—अद्भुत युवक है। देखूँ
कुमार सिंहरण कब आते हैं।

पट परिवर्तन

कों और मालवों में संधि हो गई है। चंद्रगुप्त को उनकी म्मलित सेना का सेनापति बनाने का उद्योग हो रहा है।

सिंह०—(उठ कर)—तब तो अलका, मुझे शीघ्र पहुँचना हिये!

अलका—परन्तु तुम बन्दी हो।

सिंह०—जिस तरह हो सके अलके, मुझे पहुँचाओ।

अलका—(कुछ सोचने लगती है)—तुम जानते हो कि मैं ो बन्दिनी हूँ?

सिंह०—क्यों?

अलका—आम्भीक से पर्व्वतेश्वर की संधि हो गई है और यं सिकन्दर ने विरोध मिटाने के लिये पर्व्वतेश्वर की भगिनी से म्भीक का व्याह करा दिया है। परन्तु आम्भीक ने यह जान र भी कि मैं यहाँ बन्दिनी हूँ, मुझे छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया। सकी भीतरी इच्छा थी, कि पर्व्वतेश्वर की कई रानियों में से क मैं भी हो जाऊँ! परन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया।

सिंह०—अलका, तब क्या करना होगा?

अलका—यदि मैं पर्वतेश्वर से व्याह करना स्वीकार करूँ तो म्भव है कि तुमको छुड़ा दूँ।

सिंह०—मैं .....अलका! मुझसे पूछती हो!

अलका—दूसरा उपाय क्या है?

सिंह०—मेरा सिर घूम रहा है। अलका! तुम पर्व्वतेश्वर की भार्य्या होओगी! अच्छा होता कि इसके पहले ही मैं न रह जाता!

सम्हलते धीरे धीरे चलो—इसी मिस तुमको लगे विलम्ब
सफल हो जीवन की सब साध—मिले आशा को कुछ अवलंब
विश्व की सुषमाओं का स्रोत बह चलेगा आँखो की राह
में दुर्लभ होगी पहचान, रूप-रत्नाकर भरा अथाह

पर्व्वतेश्वर का प्रवेश—

पर्व्व०—सुन्दरी अलका, तुम कब तक यहाँ रहोगी ?

अलका—यह बंदी बनानेवाले की इच्छा पर निर्भर करता है।

पर्व्व०—तुम्हे कौन बंदी कहता है ? यह तुम्हारा अन्याय ; अलका ! चलो, सुसज्जित राजभवन तुम्हारी प्रत्याशा में है।

अलका—नहीं पौरव, मैं राजभवनो से डरती हूँ, क्योंकि के लोभ से मनुष्य आजीवन मानसिक कारावास भोगता है।

पर्व्व०—इसका तात्पर्य्य ?

अलका—कोमल शय्या पर लेटे रहने की प्रत्याशा मे त्रता का भी विसर्जन करना पड़ता है—यही उन विलास-राजभवनो का प्रलोभन है।

पर्व्व०—व्यंग न करो अलका ! पर्व्वतेश्वर ने जो कुछ किया वह भारत का एक एक बच्चा जानता है। परंतु दैव प्रतिकूल तब क्या किया जाय !

अलका—मैं मानती हूँ, परंतु आपकी आत्मा इसे मानने के प्रस्तुत न होगी। हम लोग जो आपके लिये, देश के लिये, देने को प्रस्तुत थे केवल यवनो को प्रसन्न करने के लिये किये गये !

प्रलका—यही कि सिकंदर के भारत में रहने तक मैं किसी के लिये बाध्य न की जाऊँ। पंचनद-नरेश, यह दस्युदल ती बाढ़ के समान निकल जायगा, विश्वास रखिये।

पर्व्व०—सच कहती हो अलका! अच्छा मैं प्रतिज्ञा करता ुम जैसा कहोगी वही होगा। सिंहरण के लिये रथ आवेगा : तुम्हारे लिए शिविका। देखो भूलना मत।

चिंतित भाव से प्रस्थान

गणमुख्य—यह उन लोगों की इच्छा पर है। अस्तु, महा-
धिकृत-पद के लिये चंद्रगुप्त को वरण करने की आज्ञा परिषद्
है।

यों का मंगलाचार करने की सामग्री लेकर प्रवेश, पट्टबन्ध होना —
और समवेत जयघोष

गाती है—

बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिंता लेख
छायापथ में राह देखती गिनती प्रणय-अवधि की रेख
प्रियतम के आगमन-पंथ मे उड़ न रही है कोमल धूल
कादम्बिनी उठी यह ढकने वाली दूर जलधि के कूल
समय-विहग के कृष्णपक्ष में रजत चित्र-सी अंकित कौन
तुम हो सुन्दरि तरल तारिके! बोलो कुछ बैठो मत मौन
मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखे क्यो नादान
रूप-निशा की ऊषा मे फिर कौन सुनेगा तेरा गान

पर्व्व०—अलका! मैं पागल होता जा रहा हूँ! यह तुमने क्या कर दिया है।

अलका—मैं तो गा रही हूँ।

पर्व्व०—परिहास न करो। बताओ मैं क्या करूँ?

अलका—यदि सिकन्दर के रण-निमन्त्रण में तुम न जाओगे तो तुम्हारा राज्य चला जायगा?

पर्व्व०—बड़ी विडम्बना है!

अलका—पराधीनता से बढ़ कर विडम्बना और क्या है? अब समझ गये होगे कि वह संधि नहीं, अधीनता की स्वीकृति थी।

पर्व्व०—मैं समझता हूँ कि एक हजार अश्वारोहियों को साथ लेकर वहाँ पहुँच जाऊँ, फिर, कोई बहाना ढूँढ़ निकालूँगा।

अलका—(मन में)—मैं चलूँ, निकल भागने का ऐसा

अवसर दूसरा न मिलेगा ।—(प्रकट)—अच्छा बात है ! मैं भी साथ चलूँगी । मैं यहाँ अकेले क्या करूँगा ?

पर्व्व॰—चलना ।

पर्वतेश्वर का प्रस्थान

रावी के तट पर सैनिकों के साथ मालविका और चन्द्रगुप्त

नदी में दूर पर कुछ नावें

माल०—मुझे शीघ्र उत्तर दीजिये।

चंद्र०—जैसा उचित समझो, तुम्हारी आवश्यक ...
हारे अधीन रहेगी। सिंहरण को कहाँ छोड़ा?

माल०—आते ही होंगे।

चंद्र०—(सैनिकों से)—तुम लोग कितनी दूर तक गये थे?

सैनिक—अभी चार योजन तक यवनों का पता नहीं। परन्तु
छ भारतीय सैनिक रावी के उस पार दिखाई दिये। मालव
ी पचासो हिस्त्रिकाये वहाँ निरीक्षण कर रही हैं। उन पर
नुर्धर हैं।

सिंह०—(प्रवेश करके)—पर्व्वतेश्वर की सेना होगी। किन्तु
मागध! आश्चर्य्य है।

चंद्र०—आश्चर्य्य कुछ नहीं।

सिंह०—क्षुद्रकों के केवल कुछ ही गुल्म आए हैं, और तो...

चंद्र०—चिन्ता नहीं। कल्याणी के मागध सैनिक और
क्षुद्रक अपनी घात में हैं। यवनो को इधर आ जाने दो। सिंहरण,
थोड़ी-सी हिंस्त्रिकाओं पर मुझे साहसी वीर चाहिये।

सिंह०—प्रस्तुत हैं, आज्ञा दीजिये।

चंद्र०—यवनो की जलसेना पर आक्रमण करना होगा

सिंह०—सिकंदर से मालवों की कोई संधि नहीं हुई है, से वे इस कार्य के लिये वाध्य हों। हाँ, भेंट करने के लिये व सदैव प्रस्तुत है—चाहे संधिपरिषद् में या रणभूमि में।

यवन—तो यही जाकर कह दूँ?

सिंह०—हाँ, जाओ—(रक्षकों से)—इन्हें सीमा तक पहुँचा दो।

यवन का रक्षकों के साथ प्रस्थान

चंद्रगुप्त—मालव, हम लोगों ने भयानक दायित्व उठाया है, ा निर्वाह करना होगा।

सिंह०—जीवन मरण से खेलते हुए करेंगे वीरवर!

चंद्र०—परन्तु सुनो तो, यवन लोग आर्य्यों की रणनीति हीं लड़ते। वे हमीं लोगों के युद्ध हैं, जिनमें रणभूमि के पास ृषक स्वच्छंदता से हल चलाता है। यवन आतंक फैलाना ते हैं और उसे अपनी रणनीति का प्रधान अंग मानते हैं। ह साधारण प्रजा को लूटना, गाँवों को जलाना, उनके भीषण साधारण कार्य्य हैं।

सिंह०—युद्ध-सीमा के पास के लोगों को भिन्न दुर्गों में ा होने की आज्ञा प्रचारित हो गई है। जो होगा, देखा गा।

चंद्र०—पर एक बात सदैव ध्यान में रखनी होगी।

सिंह०—क्या?

चंद्र०—यही कि हमें आक्रमणकारी यवनों को यहाँ से

राक्षस—मगध विपन्न कहाँ है ?

चाणक्य—तो मैं क्षुद्रकों से कह दूँ कि तुम लोग ग
... , और यवनों से भी यह कह दिया जाय कि वास्तव में
स्कंधावार प्राच्य देश के सम्राट का नहीं है जिससे मयभीत
तुम विपाशा पार नहीं होना चाहते यह तो क्षुद्रकों का
है जो तुम्हारे लिये मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड़
प्रस्तुत है—क्यों ?

राक्षस—(विचार कर)—आह ब्राह्मण ! मैं स्वयं
यह तो मान लेने योग्य सम्मति है। परंतु—

चाणक्य—फिर परंतु लगाया ! तुम स्वयं रहो और
कुमारी भी रहें। और, तुम्हारे साथ जो नवीन गुल्म आये हैं
भी रखना पड़ेगा। जब सिकंदर रावी की अंतिम धार पर प
तब तुम्हारे सैन्य का काम पड़ेगा। राक्षस ! फिर भी
पर मेरा स्नेह है। मैं उसे उजड़ने और हत्याओं से ब
चाहता हूँ।

प्रस्थान

कल्याणी—क्या इच्छा है अमात्य ?

राक्षस—मैं इसका मुँह भी नहीं देखना चाहता। पर इ
बातें मानने के लिये विवश हो रहा हूँ। राजकुमारी ! यह
का विद्रोही अब तक बंदी कर लिया जाता, यदि इसके स्व
की आवश्यकता न होती।

कल्याणी—जैसी सम्मति हो।

चाणक्य का पुनः प्रवेश

चाणक्य—अमात्य! शेर पिंजड़े मे बंद हो गया है!

राक्षस—कैसे?

चाणक्य—जलयात्रा मे इतना विघ्न उपस्थित हुआ कि सिकंदर को स्थलमार्ग से मालवो पर आक्रमण करना पड़ा। अपनी विजयो पर फूल कर उसने ऐसा किया परंतु जा फँसा उनके चंगुल में। अब इधर क्षुद्रकों और मागधो की नवीन सेनाओ से उस पर धावा बोल देना चाहिये।

राक्षस—तब तुम क्या कहते हो? क्या चाहते हो?

चाणक्य—यही कि तुम अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर विपाशा के तट की रक्षा करो; और क्षुद्रको को लेकर मैं पीछे से आक्रमण करने जाता हूँ। इसमें तो डरने की बात कोई नही?

राक्षस—मैं स्वीकार करता हूँ।

चाणक्य—यदि न करोगे तो अपना ही अनिष्ट करोगे!

प्रस्थान

कल्याणी—विचित्र ब्राह्मण है अमात्य! मुझे तो इसको देख कर डर लगता है!

राक्षस—विकट है! राजकुमारी, एक बार इससे मेरा द्वंद्व होना अनिवार्य्य है, परंतु मैं उसे बचाना चाहता हूँ।

कल्याणी—चलिये सेना मे घोषणा करनी होगी।

कल्याणी का प्रस्थान

चाणक्य—(पुन: प्रवेश करके)—राक्षस! एक बात तुम्हारे कल्याण की है, सुनोगे?

राक्षस—क्या?

चाणक्य—नंद को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित सम्बन्ध का विश्वास हो गया है। अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक न होगा। समझे!

चाणक्य का सवेग प्रस्थान, राक्षस सिर पकड़ कर बैठ जाता

स्थान—दुर्ग का भीतरी भाग, एक शून्य परकोटा ।

मालविका—अलका, इधर तो कोई भी सैनिक नहीं है ! शत्रु इधर से आवे तब ?

अलका—दुर्ग ध्वंस करने के लिये यंत्र लगाये जा चुके हैं। मालव-सेना सुख की नींद नहीं सो रही है। सिंहरण को भीतरी रक्षा का भार देकर चंद्रगुप्त नदी तट से यवन-के पृष्ठभाग पर आक्रमण करेंगे। आज ही युद्ध का अंतिम य है। जिस स्थान पर यवन-सेना को ले आना अभीष्ट था, वक पहुँच गई है।

माल०—अच्छा चलो, कुछ नवीन आहत आ गये हैं, की सेवा का प्रबंध करना है।

अलका—(देख कर)—मालविका ! मेरे पास धनुष है और र है, इस आपत्ति काल मे एक आयुध अपने पास रखना हिये। तू कटार अपने पास रख ले।

माल०—मैं डरती हूँ, घृणा करती हूँ। रक्त की प्यासी छुरी अलग करो अलका, मैंने सेवा का व्रत लिया है।

अलका—प्राणों के भय से शस्त्र से घृणा करती हो क्या ?

माल०—प्राण तो धरोहर है, जिसका होगा वही लेगा, मुझे ों से इसकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं। मैं

यवन—दुर्गद्वार टूटता है और अभी हमारे वीर सैनिक इस
को मटियामेट करते हैं।

सिंह०—पीछे चंद्रगुप्त की सेना है मूर्ख ! इस दुर्ग में आकर
ी वंदी होगे। ले जाओ, सिकंदर को उठा ले जाओ, जब
और मालवो को यह न विदित हो जाय कि वह यही
ंदर है।

मालव सैनिक—सेनापति, रक्त का बदला ! इस नृशंस ने
ह जनता का अकारण वध किया है ! प्रतिशोध ?

सिंह०—ठहरो, मालव वीरो ! ठहरो। यह भी एक प्रतिशोध
यह भारत के ऊपर एक ऋण था; पर्व्वतेश्वर के प्रति उदा-
दिखाने का यह प्रत्युत्तर है। यवन ! जाओ, शीघ्र जाओ !

ों यवन सिकंदर को लेकर जाते हैं, घबराया हुआ एक सैनिक आता है

सिंह०—क्या है ?

सैनिक—दुर्ग द्वार टूट गया, यवन-सेना भीतर आ रही है !

सिंह०—कुछ चिन्ता नहीं। दृढ़ रहो ! समस्त मालव-सेना
कह दो कि सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा। (अलका से—) तुम
ालविका को साथ लेकर अंत:पुर की स्त्रियो को भूगर्भ-द्वार से
ुत स्थान पर ले जाओ। अलका ! मालव स्थान के ध्वस पर ही
र्यों का यश-मंदिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा। जाओ !

का का प्रस्थान। यवन-सैनिकों का प्रवेश, दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त का
प्रवेश और युद्ध। एक यवन सैनिक दौड़ा हुआ आता है

यवन—सेनापति सिल्यूकस ! क्षुद्रकों की सेना भी पीछे आ

तृतीय अंक

१

विपाशा का तट—राक्षस टहलता हुआ

राक्षस—एक दिन चाणक्य ने कहा था कि आक्रमणकारी यवन, ब्राह्मण और बौद्धों का भेद न मानेंगे। वही बात ठीक उतरी। यदि मालव और क्षुद्रक परास्त हो जाते और यवन-सेना शतद्रु पार कर जाती तो मगध का नाश निश्चित था। मूर्ख मगध-नरेश ने संदेह किया है और बार-बार मेरे लौट आने की आज्ञायें आने लगी हैं! परंतु ......

एक चर प्रवेश करके प्रणाम करता है

राक्षस—क्या समाचार है?

चर—बड़ा ही आतंकजनक है अमात्य!

—कुछ कहो भी! ... कर कुचक्र रचने का अभि-

?

अधिकार करके कुचक्र

ले आनेवाले के लिये

करने

हो?

राक्षस—इसके लिए मै चाणक्य का कृतज्ञ हूँ।

नवागत०—परंतु अमात्य ! कृतज्ञता प्रकट करने के लिये आपको उनके समीप तक चलना होगा।

सैनिकों को संकेत करता है, पहले पाँचों को लेकर पाँच चले जाते हैं।

राक्षस—मुझे कहाँ चलना होगा ? राजकुमारी से शिविर में भेंट कर लूँ।

नवागत०—वहीं सबसे भेंट होगी। यह पत्र है !

राक्षस पत्र लेकर पढ़ता है

राक्षस—अलका का सिंहरण से ब्याह होने वाला है, उसमें मैं भी निमंत्रित किया गया हूँ। चाणक्य विलक्षण बुद्धि का ब्राह्मण है, उसकी प्रखर प्रतिभा कूट-राजनीति के साथ दिन-रात जैसे खिलवाड़ किया करती है।

नवागत०—हाँ आपने और भी कुछ सुना है !

राक्षस—क्या ?

नवागत—यवनों ने मालवों से संधि का संदेश भेजा है। सिकंदर ने उस वीर रमणी अलका को देखने की बड़ी इच्छा प्रकट की है, जिसने दुर्ग मे सिकंदर का प्रतिरोध किया था !

राक्षस—आश्चर्य्य !

चर—हाँ अमात्य ! यह तो मैं कहने ही नहीं पाया था। रावी-तट पर एक विस्तृत शिविरों की रंगभूमि बनी है, जिसमें अलका का ब्याह होगा। जबसे सिकंदर को यह विदित हुआ है कि अलका तक्षशिला-नरेश आम्भीक की बहिन है, तब से उसे एक

रावी-तट के उत्सव-शिविर का एक अंश। पर्व्वतेश्वर अकेले टहलते हुए—

पर्व्व०—आह ! कैसा अपमान ! जिस पर्व्वतेश्वर ने उत्तरापथ में अनेक प्रबल शत्रुओं के रहते भी विरोधो को कुचल कर गर्व से सिर ऊँचा कर रक्खा था, जिसने दुर्दान्त सिकंदर के सामने मरण को तुच्छ समझते हुए, वक्ष ऊँचा करके भाग्य से हँसी-ठट्ठा किया था ; उसी का यह तिरस्कार !—सो भी एक स्त्री के द्वारा ! और सिकंदर के सकेत से ! प्रतिशोध ! रक्तपिशाची प्रतिहिंसा अपने दाँतो से नसो को नोच रही है ! मरूँ या मार डालूँ ? मारना तो असम्भव है ! सिंहरण और अलका, वर-वधू-वेश में हैं ; मालवो के चुने हुए वीरो से वे घिरे हैं। सिकंदर उनकी प्रशंसा और आदर में लगा है । इस समय सिंहरण पर हाथ उठाना असफलता के पैरों-तले गिरना है। तो फिर जीकर क्या करूँ ?

छुरा निकाल कर आत्महत्या करना चाहता है, चाणक्य आकर

हाथ पकड़ लेता है

पर्व्वतेश्वर—कौन ?

चाणक्य—ब्राह्मण चाणक्य ।

पर्व्व०—इस मेरे अन्तिम समय में भी क्या कुछ दान लेते हो ?

चाणक्य—हाँ !

और करना होगा वह कार्य्य—जिसमे भारतीयो का गौरव हो और तुम्हारे क्षात्रधर्म्म का पालन हो।

पर्व्व०—(छुरा फेंक कर)—वह क्या काम है ?

चाणक्य—जिन यवनो ने तुमको लाञ्छित और अपमानित किया है उनसे प्रतिशोध !

पर्व्व०—असंभव है !

चाणक्य—(हँस कर)—मनुष्य अपनी दुर्वलता से भली-भांति परिचित रहता है। परंतु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिये—असभव कह कर किसी काम को करने के पहले कर्मक्षेत्र मे कॉप कर लड़खड़ाओ मत पौरव ! तुम क्या हो—विचार कर देखो तो ! सिकंदर ने जो क्षत्रप नियुक्त किया है, जिन संधियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है, वे सब क्या हैं ? अपने लूटपाट को वह साम्राज्य के रूप मे देखना चाहता है। चाणक्य जीते जी यह नही होने देगा। तुम राज्य करो।

पर्व्व०—परतु आर्य्य, मैंने राज्य दान कर दिया है।

चाणक्य—पौरव, तामस त्याग से सात्विक ग्रहण उत्तम है। वह दान न था ; उसमे कोई सत्य नहीं। तुम उसे ग्रहण करो।

पर्व्व०—तो क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—पीछे बतलाऊँगा। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि सिंहरण को अपना भाई समझो और अलका को बहन—

चंद्र०—स्मृति जीवन का पुरस्कार है सुंदरी !

कार्ने०—परन्तु मैं कितने दूर देश की हूँ। स्मृतियाँ ऐसे अवसर पर दण्ड हो जाती हैं। अतीत के कारागृह मे बंदिनी स्मृतियाँ अपने करुण निश्वास की शृंखलाओं को झनझना कर सूचीभेद्य अंधकार में सो जाती हैं।

चंद्र०—ऐसा हो तो भूल जाओ शुभे ! इस केन्द्रच्युत जलते ए उल्कापिण्ड की कोई कक्षा नही। निर्वासित, अपमानित प्राणों ी चिन्ता क्या ?

कार्ने०—नहीं चंद्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान ह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिओं की माला पहने हुए शैलश्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की दनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरला कृषक-...लेकायें, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि,—भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं; यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।

चंद्र०—शुभे, मैं यह सुन कर चकित हो गया हूँ।

कार्ने०—और मैं मर्म्माहत हो गई हूँ चंद्रगुप्त, मुझे पूर्ण विश्वास था कि यहाँ के क्षत्रप पिताजी नियुक्त होंगे और मैं अलेग्जेंड्रिया में समीप ही रह कर भारत को देख सकूँगी। परंतु वैसा न हुआ, सम्राट् ने फिलिपस को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया है।

अकस्मात् फिलिपस का प्रवेश

फिलि०—तो बुरा क्या है कुमारी ! सिल्यूकस के यहाँ न होने पर भी कार्नेलिया यहाँ का शासक हो सकता है। फिलिपस अनुचर होगा—(देख कर)—फिर वही भारतीय युवक !

चन्द्र०—सावधान ! यवन ! हम लोग एक बार एक दूसरे की परीक्षा ले चुके हैं।

फिलि०—ऊँह ! तुमसे मेरा सबंध ही क्या है, परन्तु

कार्ने०—और मुझसे भी नहीं, फिलिपस ! मैं चाहती हूँ कि तुम मुझसे न बोलो।

फिलि०—अच्छी बात है। किन्तु मैं चन्द्रगुप्त को भी तुमसे बातें करते हुए नहीं देख सकता। तुम्हारे प्रेम का

कार्ने०—चुप रहो, मैं कहती हूँ चुप रहो !

फिलि०—(चन्द्रगुप्त से)—मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध किया चाहता हूँ।

चन्द्र०—जब इच्छा हो, मैं प्रस्तुत हूँ। परन्तु सन्धि भंग करने के लिये तुम्हीं अग्रसर होगे, यह अच्छी बात होगी।

फिलि०—सन्धि राष्ट्र का है। यह मेरी व्यक्तिगत बात है। अच्छा फिर कभी मैं तुम्हें आह्वान करूँगा।

चन्द्र०—आधी रात, पिछले पहर, जब तुम्हारी इच्छा हो।

फिलिपस का प्रस्थान

कार्ने०—सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूँ कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियाँ भी लड़

रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकंदर और चंद्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।

चंद्र०—मैं क्या हूँ, मैं एक निर्वासित—

कार्नें०—लोग चाहे जो कहे, मैं भलीभाँति जानती हूँ कि अभी तक चाणक्य की विजय है। पिताजी से और मुझसे इस विषय पर अच्छा विवाद होता है। वे अरस्तू के शिष्यों में हैं।

चंद्र०—भविष्य के गर्भ में अभी वहुत से रहस्य छिपे हैं।

कार्नें०—अच्छा, तो मै जाती हूँ और फिर एक वार अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि मैं पुनः लौट कर आऊँगी।

चंद्र०—उस समय भी मुझे भूलने की चेष्टा करोगी?

कार्नें०—नहीं। चंद्रगुप्त! विदा,—यवन-वेड़ा आज ही

दोनों एक दूसरे की ओर देखते हुए जाते हैं

राक्षस और कल्याणी का प्रवेश

कल्याणी—ऐसा विराट् दृश्य तो मैंने नहीं देखा था अमात्य! । को किस वात का गर्व है?

राक्षस—गर्व है राजकुमारी! और उसका गर्व सत्य है। ।क्य और चंद्रगुप्त मगध की ही प्रजा हैं, जिन्होंने इतना वड़ा :फेर किया है!

चाणक्य का प्रवेश

चाणक्य—तो तुम इसे स्वीकार करते हो अमात्य, राक्षस?

कल्याणी—तुमने अपना कर्त्तव्य भलीभाँति सोच लिया होगा। मैं जाती हूँ, और विश्वास दिलाती हूँ कि मुझसे तुम्हारा अनिष्ट न होगा।

दोनों का प्रस्थान

चंद्र०—आप वीर हैं।

सिकं०—आर्य्य वीर ! मैंने भारत मे हरक्यूलिस, एचिलिस
ी आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को।
भवत: प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। मैं भारत का अभिनन्दन
ता हूँ।

सिल्यू०—सम्राट् ! यही आर्य्य चाणक्य हैं।

सिकं०—धन्य हैं आप, मै तलवार खींचे हुए भारत मे
गा, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय विमुग्ध हूँ। आर्य्य, जिनसे
ग-परीक्षा हुई थी, युद्ध में जिनसे तलवारें मिली थी, उनसे
मिला कर—मैत्री के हाथ मिला कर जाना चाहता हूँ।

चाणक्य—हम लोग प्रस्तुत हैं सिकंदर शाह ! तुम वीर हो,
ीय सदैव उत्तम गुणो की पूजा करते हैं। तुम्हारी जलयात्रा
मय हो ! हम लोग युद्ध करना जानते हैं, द्वेष नहीं।

कंदर हँसता हुआ अनुचरों के साथ नौका पर आरोहण करता है,
नाव चलती है

राक्षस—तो चलो । मैं चाणक्य के हाथों का कठपुतला
न कर मगध का नाश नहीं करा सकता ।

दोनों का प्रस्थान

अलका और सिंहरण का प्रवेश—

सिंह०—देवी ! पर इसका उपाय क्या है ?

अलका—उपाय जो कुछ हो, मित्र के कार्य्य में तुमको सहा-
करनी ही चाहिये । चंद्रगुप्त आज कह रहे थे कि मैं मगध
ा, देखूँ पर्व्वतेश्वर क्या करते हैं ।

िंह०—चंद्रगुप्त के लिये यह प्राण अर्पित हैं अलके, मालव
नहीं होते । देखो आज हम लोगों के नदी-तट पर घूमने की
ी—चंद्रगुप्त और चाणक्य आ रहे हैं ।

लका—और उधर से पर्व्वतेश्वर भी ।

चंद्रगुप्त, चाणक्य और पर्व्वतेश्वर का प्रवेश

िंह०—मित्र ! अभी कुछ दिन और ठहर जाते तो अच्छा
अथवा जैसी गुरुदेव की आज्ञा ।

चाणक्य—पर्व्वतेश्वर, तुमने मुझसे प्रतिज्ञा की है !

पर्व्व०—मैं प्रस्तुत हूँ, आर्य्य !

चाणक्य—अच्छा तो तुम्हें मेरे साथ चलना होगा पूरे प्रबंध के
सिंहरण मालव गणराष्ट्र का एक व्यक्ति है, वह अपनी शक्ति
यत्न कर सकता है । और सहायता बिना परिषद् की अनु-
संभव है । मैं परिषद् के सामने अपना भेद खोलना
स लिये पौरव, सहायता केवल तुम्हें करनी होगी ।

अलका—परन्तु फिलिपस के द्वन्द्वयुद्ध से चन्द्रगुप्त लौट तो आने दीजिये, क्या जाने क्या हो!

चाणक्य—क्या हो ? वही होकर रहेगा जिसे चाणक्य विचार करके ठीक कर लिया है। किन्तु अवसर पर क्षण का विलम्ब असफलता का प्रवर्त्तक हो जाता है।

मालविका जाती है

अलका—गुरुदेव, महानगरी कुसुमपुरी का ध्वंस और पराजय इस प्रकार सम्भव है ? कदापि नहीं।

चाणक्य—अलके! आक्रमण करना पर्वतेश्वर का चाणक्य अपना काम अपनी बुद्धि से साधन करेगा। देखती भर रहो और जो मैं बताऊँ करती चलो। अभी बालिका है, उसकी रक्षा आवश्यक है। उसे देखो तो।

अलका जाती है

चाणक्य—वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे हुआ था। मेरे उस सरल हृदय में उत्कट इच्छा थी। सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में थी और उसके लिये मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। परन्तु संसार—कठोर संसार न सिखा दिया कि तुम्हें परखना होगा। समझदारी आने पर यौवन चला जाता है—जब तक माला गूँथी जाती है तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूमधाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुदर और उपयुक्त नहीं

...सार रह सकता ? मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक उस श्यामल कोमल हृदय को मरुभूमि बना देती है। यही तो ...मता है। मैं—अविश्वास, कूटचक्र और छलनाओं का ...काल ; कठोरताओं का केन्द्र ! आह ! तो इस विश्व में मेरा कोई सुहृद नहीं ? है, मेरा संकल्प ; अब मेरा आत्माभिमान ही मेरा मित्र है। और थी एक क्षीणरेखा, वह जीवन पट से धुल चली है। धुल जाने दूँ ? सुवासिनी ! न न न, वह कोई नहीं। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर आसक्त हूँ। बड़ी सुंदरी है। भयानक रमणीयता है। आज उस प्रतिज्ञा में जन्मभूमि के प्रति कर्त्तव्य का भी यौवन चमक रहा है। तृण-शय्या पर आधे पेट खाकर सो रहने वाले के सिर पर दिव्य यश का स्वर्ण मुकुट ! और सामने सफलता का स्मृति-सौध (आकाश की ओर देखकर) वह, इन लाल बादलों में दिग्दाह का धूम मिल रहा है। भीषण रव से घन जैसे चाणक्य का नाम चिल्ला रहे हैं। क्या इसमें भी कोई सौन्दर्य है ! क्यों नहीं, प्रत्येक परिवर्त्तन सौन्दर्य संदर्भ का पृष्ठ है ! (देखकर) हैं ! यह कौन भूमिसधि तोड़ कर सर्प के समान निकल रहा है ! छिप कर देखूँ—

छिप जाता है। एक दूह की मिट्टी गिरती है, उसमें से शकटार वन-मनुष्य के समान निकलता है।

शक०—(चारो ओर देखकर आँख बन्द कर लेता है, फिर खोलता हुआ)—आँखें नहीं सह सकतीं, इन्हीं प्रकाश-किरणों के लिये तड़प रही थीं ! ओह ! तीखी हैं ! तो क्या मैं जीवित हूँ !

कितने दिन हुए, कितने महीने, कितन बरस ? नहीं अन्धकूप की प्रधानता सर्वोपरि थी। सात लड़के भूख स मर मर। कृतज्ञ हूँ उस अन्धकार का, जिसन उन मुखों को न देखन दिया। केवल उनके दम तोड़न क शब्द सुन सका। ओह! फिर भी जीवित रहा—सत्तू और पानी से मिलाकर, अपनी नसों में से रक्त पीकर ज वित प्रतिहिंसा के लिए! पर अब शेष है, दम घुट रहा है। आह (गिर पड़ता है)

चाणक्य पास आकर कपड़ा निचोड़ कर मुँह में जल डाल करता है

चाणक्य—आह! तुम कोइ दुखी मनुष्य हो! घबराओ मैं तुम्हारी सहायता क लिये प्रस्तुत हूँ।

शक०—(ऊपर देखकर) तुम सहायता करोगे? आश्चर्य मनुष्य मनुष्य की सहायता करगा, वह उसे हिंस्र पशु क नोंच न डालगा! हाँ यह दूसरी बात है कि वह जोंक की कष्ट दिये रक्त चूसे। उसका कोइ स्वार्थ हो। तुम भूख भेड़िये! मुँह मत दिखलाओ!

चाणक्य—अभाग मनुष्य! सबसे चौंक कर अलग न उछल! अविश्वास की चिनगारी पैरों के नीचे से हटा। तुम-जैसे दुखी बहुत से पड़ हैं। यदि सहायता नहीं तो परस्पर का स्वार्थ ही सही।

शक०—दुःख! दुःख का नाम सुना होगा, या कल्पित आशंका से तुम उसका नाम लेकर चिल्ला उठते होगे। देखा है

[श]क०— सात सात गोद के लालो को भूख से तडप कर मरते ? [अ]न्धकार की घनी चादर में, बरसो भूगर्भ की जीवित समाधि में [ए]क दूसरे को अपना आहार देकर स्वेच्छा से मरते—देखा है—[प्र]तिहिंसा की स्मृति को नोचते हुए, ठोकरें मार कर जगाते जगाते, [प्रा]ए विसर्जन करते ? देखा है कभी यह कष्ट—उन सबो ने [अ]पना आहार मुझे दिया और पिता होकर भी मैं पत्थर-सा [ज]ीवित रहा ! उनका आहार खा डाला—उन्हे मरने दिया ! [ज]ानते हो क्यों ? वे सुकुमार थे, वे सुख की गोद मे पले थे, वे [न]हीं सहन कर सकते थे, अतः सब मर जाते। मैं बच रहा प्रतिशोध के लिए। दानवी प्रतिहिंसा के लिये। ओह ! उस अत्याचारी नर-राक्षस की अँतड़ियो में से खींचकर एक बार रक्त का फुहारा छोड़ता !— इस पृथ्वी को उसी से रँगा देखता !

चाणक्य—ठहरो। सावधान। (शकटार को उठाता है)

शक०—सावधान हो वे जो दुर्बलो पर अत्याचार करते हैं ! मैं पीड़ित, पददलित, सब तरह लुटा हुआ, मुझे सावधान रहने की आवश्यकता क्या ? जिसने पुत्रो की हड्डियो से सुरग खोदा है, [न]खो से मिट्टी हटाई है, उसके लिए सावधान रहने की आवश्यकता नहीं। मेरी वेदना अपने अन्तिम अस्त्रो से सुसज्जित है।

चाणक्य—तो भी तुमको प्रतिशोध लेना है। हम लोग एक पथ के पथिक हैं। घबराओ मत। क्या तुम्हारा और कोई ... में जीवित नहीं ?

शक०—बची थी, पर न जाने कहाँ है। माता की स्मृति—सुवासिनी। पर अब कहाँ है, कौन जाने!

चाणक्य—क्या कहा? सुवासिनी!

शक०—हाँ सुवासिनी।

चाणक्य—और तुम शकटार हो?

शक०—(चाणक्य का गला पकड़ कर)—घोंट दूँगा। यदि फिर यह नाम तुमने लिया! मुझे नन्द से प्रतिशोध ले लेने दो, फिर चाहे डौंडी पीटना।

चाणक्य—(उसका हाथ हटाते हुए)— वह सुवासिनी की रंगशाला में है। मुझे पहचानते हो?

शक०—नहीं तो—(देखता है)

चाणक्य—तुम्हारे प्रतिवेशी, सगा, ब्राह्मण चणक का विष्णुगुप्त। तुम्हारी दिलाई हुई जिसकी ब्रह्मवृत्ति छीन ली गई, जो तुम्हारा सहकारी जान कर निर्वासित कर दिया गया, मैं चणक का पुत्र चाणक्य हूँ जिसकी शिखा पकड़ कर राजसभा में खींची गई, जो बन्दीगृह में मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था! मुझ पर विश्वास करोगे?

शक०—(विचारता हुआ खड़ा हो जाता है)—करूँगा। जो तुम कहोगे वही करूँगा। किसी तरह प्रतिशोध चाहिये।

चाणक्य—तो चलो मेरी झोंपड़ी में! इस सुरंग को फूस से ढँक दो।

दोनों ढँक कर जाते हैं

७

नन्द की राजसभा

नन्द—आज क्यों मेरा मन अनायास ही शंकित हो रहा है! कुछ नहीं ..... होगा कुछ।

सेनापति मौर्य्य की स्त्री को साथ लिये हुए वररुचि का प्रवेश

नन्द—कौन है यह स्त्री ?

वररुचि—जय हो देव, यह सेनापति मौर्य की स्त्री है।

नन्द—क्या कहना चाहती है ?

स्त्री—राजा प्रजा का पिता है। वही उसके अपराधों को क्षमा करके सुधार सकता है, उसे अवसर दे सकता है। चन्द्रगुप्त बालक है, सम्राट् ! उसके अपराध मगध से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, तब भी वह निर्वासित है। परन्तु सेनापति पर क्या अभियोग है ? मैं असहाय मगध की प्रजा श्रीचरणों में निवेदन करती हूं—मेरा पति छोड़ दिया जाय। पति और पुत्र दोनों से न वञ्चित की जाऊँ।

नन्द—रमणी ! राजदण्ड पति और पुत्र के मोहजाल से सर्वथा स्वतन्त्र है। षड्यन्त्रकारियों के लिये वह निष्ठुर है, निर्म्मम है ! कठोर है ! तुम लोग आग की ज्वाला से खेलने का फल भोगो ! स्त्री, नन्द इन आँसू-भरी आँखों तथा अञ्चल पसार कर भिक्षा के अभिनय में नहीं भुलवाया जा सकता।

स्त्री—ठीक है महाराज ! मैं ही भ्रम में थी। सेनापति मौर्य्य का ही तो यह अपराध है। जब कुसुमपुर की समस्त प्रजा विरुद्ध

थी, जब नारज पुत्र के रक्तरँगे हाथों से सम्राट् महानन्द का शेष हुए थीं, तभी सेनापति को चेतना चाहिए था। उसने कृतन्न के साथ उपकार किया है, यह उसे नहीं आदेश उसी का बदला है।

नन्द—चुप! दुष्टे!—(उसका केश पकड़ कर है वररुचि बीच में आकर रोकता है)

वर०—महाराज! सावधान! यह अबला है, स्त्री है!

नन्द—यह मैं जानता हूँ कात्यायन! हटो।

वर०—आप जानते हो, पर इस समय आपको गया है।

नन्द—तो क्या मैं तुम्हें भी इसी कुचक्र में लिप्त समझूँ?

वर०—यह महाराज की इच्छा पर निर्भर है। और का दास न रहना मेरी इच्छा पर, मैं शस्त्र समर्पण करता हूँ!

नन्द—(वररुचि का छुरा छीन कर —विद्रोह! ब्राह्मण हो न तुम, मैंने अपने को स्वयं धोखा दिया! जाओ। परन्तु, ठहरो! प्रतिहार!

प्रतिहार सामने आता है

नन्द—इसे बंदी करो! और, इस स्त्री के साथ मौर्य्य के समीप पहुँचा दो।

प्रहरी दोनों को बन्दी करते हैं

वर०—नन्द! तुम्हारे पाप का घड़ा फूटा ही चाहता है! अत्याचार की चिनगारी साम्राज्य का हरा भरा कानन दग्ध कर

गी ! न्याय का गला घोंट कर तुम उस भीषण पुकार को नहीं दबा सकोगे जो तुम तक पहुँचती है अवश्य, किन्तु चाटुकारो द्वारा और ही रंगत में।

नन्द—बस ले जाओ !—(सबका प्रस्थान)

नन्द—(स्वगत)—क्या अच्छा नहीं किया ? परंतु ये सब मिले हैं, जाने दो ! (एक प्रतिहार का प्रवेश) क्या है ?

प्रतिहार—जय हो देव ! एक सन्दिग्ध स्त्री राजमंदिर में घूमती हुई पकड़ी गई है। उसके पास अमात्य् राक्षस की मुद्रा और एक पत्र मिला है।

नन्द—अभी ले आओ।

प्रतिहार जाकर मालविका को साथ लाता है

नन्द—तुम कौन हो ?

माल०—मैं एक स्त्री हूँ, महाराज !

नन्द—पर तुम यहाँ किसके पास आई हो ?

माल०—मै-मै, मुझे किसी ने शतद्रुतट से भेजा है। मै पथ मे बीमार हो गई थी, विलम्ब हुआ।

नन्द—कैसा विलम्ब ?

माल०—इस पत्र को सुवासिनी नाम की स्त्री के पास पहुँचाने में।

नन्द—तो किसने तुम्हे भेजा है ?

माल०—मैं नाम तो नही जानती।

नन्द—हूँ !-(प्रतिहार से)-पत्र कहाँ है ?

प्रतिहार पत्र और मुद्रा लेता है, नन्द उसे पढ़ता है

नन्द—तुमको बतलाना पड़ेगा—किसने तुमको यह पत्र दि[illegible] है ? बोलो, शीघ्र बोलो ! राक्षस ने भेजा था ?

माल०—राक्षस नहीं, वह मनुष्य था !

नन्द—दुष्टे, शीघ्र बता ! वह राक्षस ही रहा होगा।

माल०—जैसा आप समझ लें।

नन्द—(क्रोध से)—प्रतिहार ! इसे भी ले विद्रोहियों की माँद में ! हाँ ठहरो, पहले जाकर शीघ्र [illegible] और राक्षस को—चाहे जिस अवस्था में हों—ले आओ !

नन्द चिंतित भाव से दूसरी ओर टहलता है मालविका बन्दी होती है

नन्द—आज सबको एक साथ ही सूली पर चढ़ा दूँगा! नहीं—(पैर पटक कर)—हाथियों के पैरों के तले कुचलवाऊँगा! यह क्या समाप्त होनी चाहिये। नन्द नीच-जन्मा है और यह विद्रोह उसी के लिये किया जा रहा है, तो फिर उसे भी दिखा देना है कि मैं क्या हूँ, यह नाम सुनकर लोग काँप उठें! प्रेम न सही, भय का ही सम्मान हो।

—पट-परिवर्तन

८

स्थान—पथ। चाणक्य और पर्व्वतेश्वर

चाणक्य—पौरव, ठीक अवसर पर तुम पहुँचे! चंद्रगुप्त कहाँ है?

पर्व्व०—सार्थवाह रूप से युद्ध-व्यवसायियों के साथ आ रहे हैं। एक पहर मे पहुँच जाने की सम्भावना है।

चाणक्य—और द्वन्द्व मे क्या हुआ?

पर्व्व०—चंद्रगुप्त ने बड़ी वीरता से वह युद्ध किया। समस्त उत्तरापथ मे फिलिपस के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया है। आर्य्य, बहुत से प्रमुख यवन और आर्य्यगण की उपस्थिति में वह युद्ध हुआ—वह खड्ग-परीक्षा देखने के योग्य थी! गतागत, प्रत्यावर्त्तन, और आक्रमणो का वह वीर दृश्य सुंदर था। चंद्रगुप्त ने प्रहर भर समर किया और फिलिपस को धराशायी बनाया!

चाणक्य—यवन लोगो के क्या भाव थे?

पर्व्व०—सिंहरण अपनी सेना के साथ रंगशाला की रक्षा कर रहा था, कुछ हलचल तो हुई, पर वह पराजय का क्षोभ था। यूडेमिस जो उसका सहकारी था, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। पर बिना सिकंदर की आज्ञा के वह कुछ कर न सकता था। मैंने भी सान्त्वना दी। किसी प्रकार वह ठंडा पड़ा। यूडेमिस सिकन्दर की आज्ञा की प्रतीक्षा में रुका था। अकस्मात सिकन्दर के मरने का समाचार मिला। यवन लोग अब अपना ही सोच रहे हैं। मैं

प्रतिहार पत्र और मुद्रा देता है, नन्द उसे पढ़ता है

नन्द—तुमको बतलाना पड़ेगा—किसने तुमको यह पत्र दिया है ? बोलो, शीघ्र बोलो ! राक्षस ने भेजा था ?

माल०—राक्षस नहीं, वह मनुष्य था !

नन्द—दुष्टे, शीघ्र बता ! वह राक्षस ही रहा होगा।

माल०—जैसा आप समझ लें।

नन्द—(क्रोध से)—प्रतिहार ! इसे भी ले जाओ—उन्हीं विद्रोहियों की माँद में ! हाँ ठहरो, पहले जाकर शाम सुवासिनी और राक्षस को—चाहे जिस अवस्था में हों—ले आओ !

नन्द चिंतित भाव से दूसरी बार टहलता है मालविका बन्दी होती है

नन्द—आज सबको एक साथ ही सूली पर चढ़ा दूँगा नहीं—(पैर पटक कर)—हाथियों के पैरों के तले कुचलवाऊँगा यह कथा समाप्त होनी चाहिये। नंद नीचजन्मा है और य विद्रोह उसी के लिये किया जा रहा है, तो फिर उसे भी दिख देना है कि मैं क्या हूँ, वह नाम सुनकर लोग काँप उठें ! प्रेम न सही, भय का ही सम्मान हो।

दृश्य-परिवर्तन

स्थान—पथ। चाणक्य और पर्व्वतेश्वर

चाणक्य—पौरव, ठीक अवसर पर तुम पहुँचे! चंद्रगुप्त कहाँ है?

पर्व्व०—सार्थवाह रूप से युद्ध-व्यवसायियों के साथ आ रहे हैं। एक पहर में पहुँच जाने की सम्भावना है।

चाणक्य—और द्वन्द्व में क्या हुआ?

पर्व्व०—चंद्रगुप्त ने बड़ी वीरता से वह युद्ध किया। समस्त उत्तरापथ मे फिलिपस के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया है। आर्य्य, बहुत से प्रमुख यवन और आर्य्यगण की उपस्थिति में वह युद्ध हुआ—वह खड्ग-परीक्षा देखने के योग्य थी! गतागत, प्रत्यावर्त्तन, और आक्रमणों का वह वीर दृश्य सुंदर था। चंद्रगुप्त ने प्रहर भर समर किया और फिलिपस को धराशायी बनाया!

चाणक्य—यवन लोगों के क्या भाव थे?

पर्व्व०—सिंहरण अपनी सेना के साथ रंगशाला की रक्षा कर रहा था, कुछ हलचल तो हुई, पर वह पराजय का क्षोभ था। यूडेमिस जो उसका सहकारी था, अत्यंत क्रुद्ध हुआ। पर बिना सिकंदर की आज्ञा के वह कुछ कर न सकता था। मैंने भी सान्त्वना दी। किसी प्रकार वह ठंढा पड़ा। यूडेमिस सिकन्दर के [illegible]ा की प्रतीक्षा मे रुका था। अकस्मात् सिकन्दर के मरने का [illegible]चार मिला। यवन लोग अब अपनी ही सोच रहे हैं। मैं

मौर्य्य—प्रणाम।

चाणक्य—शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिये जियो सेनापति! नंद के पापों की पूर्णता ने तुम्हारा उद्धार किया है। अब तुम्हारा अवसर है।

मौर्य्य—इन दुर्बल हड्डियों में अंधकूप की भयानकता खटखटा रही है।

शकटार—और रक्त-मय गंभीर वीभत्स दृश्य हत्या का निष्ठुर आह्वान कर रहा है।

चंद्रगुप्त का प्रवेश—माता-पिता के चरण छूता है

चंद्र०—पिता! तुम्हारी यह दशा!! एक-एक पीड़ा की, प्रत्येक निष्ठुरता की गिनती होगी। मेरी माँ! उन सबका प्रतिहार होगा, प्रतिशोध किया जायगा! ओह, मेरा जीवन व्यर्थ है—यह दुर्दशा भोगनी पड़ी—मेरे माता-पिता को! नन्द! सावधान!

चाणक्य—चंद्रगुप्त, सफलता का एक ही क्षण होता है। आवेश से और कर्त्तव्य से बहुत अंतर है।

चंद्रगुप्त—गुरुदेव, आज्ञा दीजिये!

चाणक्य—देखो उधर—नागरिक लोग आ रहे हैं। संभवतः यही अवसर है तुमलोगों के भीतर जाने का और विद्रोह फैलाने का।

नागरिकों का प्रवेश

पहला नागरिक—वेण और कंस का शासन क्या दूसरे प्रकार का रहा होगा? यह अंधेर!

सिंहरण को यहीं छोड़कर यहाँ चला आया, क्योंकि आपका आदेश था।

मालका का प्रवेश

अलका—गुरुदेव, यज्ञ का प्रारंभ है।

चाणक्य—मालविका कहाँ है?

अलका—वह वहीं की गई और राक्षस इत्यादि भी वहां होने ही वाले हैं। यह भी ठीक ऐसे अवसर पर जब नन्दका परिवर्त्तन हो रहा है। क्योंकि आज ही

चाणक्य—तब तुम जाओ, अलके। इस उत्सव से तुम्हें अलग न रहना चाहिये। उनके पकड़े जाने के अवसर पर ही नगर भर में उत्तेजना फैल सकती है। जाओ शीघ्र।

अलका का प्रस्थान

पर्व०—मुझे क्या आज्ञा है?

चाणक्य—कुछ चुने हुए अश्वारोहियों को साथ लेकर प्रस्तुत रहना। चन्द्रगुप्त जब भीतर से युद्ध प्रारंभ करे उस समय तुमको नगर द्वार पर आक्रमण करना होगा।

गुफा का द्वार खुलना—मौर्य्य मालविका, शकटार, वररुचि पीछे-पीछे चन्द्रगुप्त की जननी का प्रवेश

चाणक्य—आओ मौर्य्य।

मौर्य्य—हम लोगों के उद्धारकर्ता आप ही महात्मा चाणक्य हैं?

माल०—हाँ वही हैं।

मौर्य्य—प्रणाम ।

चाणक्य—शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिये जियो सेनापति ! नंद के पापो की पूर्णता ने तुम्हारा उद्धार किया है। अब तुम्हारा अवसर है।

मौर्य्य—इन दुर्बल हड्डियों में अंधकूप की भयानकता खट-खटा रही है ।

शकटार—और रक्त-मय गंभीर वीभत्स दृश्य हत्या का निष्ठुर आह्वान कर रहा है ।

चन्द्रगुप्त का प्रवेश—माता-पिता के चरण छूता है

चंद्र०—पिता ! तुम्हारी यह दशा !! एक-एक पीड़ा की प्रत्येक निष्ठुरता की गिनती होगी । मेरी माँ ! उन सबका प्रतिहार होगा, प्रतिशोध किया जायगा ! ओह, मेरा जीवन व्यर्थ है—यह दुर्दशा भोगनी पड़ी—मेरे माता-पिता को ! नन्द ! सावधान !

चाणक्य—चंद्रगुप्त, सफलता का एक ही क्षण होता है। आवेश से और कर्त्तव्य से बहुत अंतर है ।

चंद्रगुप्त—गुरुदेव, आज्ञा दीजिये !

चाणक्य—देखो उधर—नागरिक लोग आ रहे हैं। संभवतः यही अवसर है तुम लोगो के भीतर जाने का और विद्रोह फैलाने का।

नागरिकों का प्रवेश

पहला नागरिक—वेण और कंस का शासन क्या दूसरे प्रकार का रहा होगा ? यह अंधेर !

दूसरा नाग०—ब्याह की वेदी से वर-वधू को घसीट ले जाना—इतने बड़े नागरिक का यह अपमान! अन्याय है।

तीसरा नाग०—सो भी अमात्य राक्षस और सुवासिनी को! कुसुमपुर के दो सुन्दर फूल!

चौथा नाग०—और सेनापति, मन्त्री, सबों को अन्धकूप में डाल देना!

मौर्य्य—मन्त्री, सेनापति और अमात्यों को बंदी बना कर जो राज्य करता है—वह कैसा अच्छा राजा है नागरिक! उसकी कैसी अद्भुत योग्यता है! मगध का गर्व होना चाहिये।

पहला नाग०—गर्व नहीं वृद्ध! लज्जा होनी चाहिये। ऐसा जघन्य अत्याचार!

वर०—यह तो मगध का पुराना इतिहास है। जरासंध का यह अखाड़ा है। यहाँ एकाधिपत्य का कटुता सदैव से अभ्यस्त है।

दूसरा नाग०—अभ्यस्त होने पर भी अब असह्य है!

शक०—आज आप लोगों को बड़ी वेदना है, एक उत्सव का भंग होना अपनी आँखों से देखा है—केवल इसी लिये, नहीं तो जिस दिन शकटार को दण्ड मिला था, एक अभिजात नागरिक को सकुटुम्ब हत्या हुई थी, उस दिन जनता कहाँ सोई थी!

तीसरा नाग०—सच तो, पिता के समान हम लोगों की रक्षा करने वाला मन्त्री शकटार—हे भगवान!

शक०—मैं ही हूँ! कंकाल-सा जीवित समाधि से उठ खड़ा हुआ हूँ! मनुष्य मनुष्य को इस तरह कुचल कर स्थिर न रह

सकेगा। उत्पीड़न, शास्त्रो का—नियमो के समर्थन को नही समझता। मैं पिशाच बन कर लौट आया हूँ—अपने निरपराध सात पुत्रों को निष्ठुर हत्या का प्रतिशोध लेने के लिये ! चलोगे साथ?

चौथा नाग०—मंत्री शकटार ! आप जीवित हैं ?

शक०—हाँ , महापद्म के जारज पुत्र नंद की—वधिक, हिंस्र-पशु नन्द की—प्रतिहिंसा का लक्ष्य शकटार मैं ही हूँ।

सब नाग०—हो चुका न्यायाधिकरण का ढोंग। जनता की शुभ कामना करने की प्रतिज्ञा अंत हो गई। अब नहीं, आज न्यायाधिकरण मे पूछना होगा !

मौर्य्य—और मेरे लिये भी कुछ.......

नाग०—तुम .....?

मौर्य्य—सेनापति मौर्य्य—जिसका तुम लोगो को पता ही न था।

नाग०—आचश्र्य्य। हमलोग आज क्या स्वप्न देख रहे हैं ? अभी लौटना चाहिये। चलिये आप लोग भी।

शक०—परंतु मेरी रक्षा का भार कौन लेता है ?

सब इधर-उधर देखने लगते हैं, चन्द्रगुप्त तन कर खड़ा हो जाता है

चन्द्र०—मैं लेता हूँ ! मैं उन सब पीड़ित, आघात-जर्जर, पददलित लोगो का संरक्षक हूँ जो मगध की प्रजा हैं।

चाणक्य—साधु चन्द्रगुप्त !

सहसा सब उत्साहित हो जाते हैं, पर्व्वतेश्वर और चाणक्य तथा वररुचि को छोड़कर सब जाते हैं

वररुचि—चाणक्य ! यह क्या दावाग्नि फैला दी तुमने ?

चाणक्य—उत्पीड़न की चिनगारी को अत्याचारी अपने अञ्चल में छिपाये रहता है ! कात्यायन ! तुमने अपना मुख क्यों लिया ?—कोई अपराध तुमने किया था ?

वर०—नन्द की भूल थी। वह अब भी सुधारा जा सकता है। ब्राह्मण ! क्षमानिधि ! भूल जाओ।

चाणक्य—प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर हम तुम साथ ही बैठेंगे होंगे कात्यायन ! शक्ति हो जाने दो फिर क्षमा का विचार करना। चलो पर्वतेश्वर ! सावधान।

सबका प्रस्थान

९

नन्द की सभा—सुवासिनी और राक्षस बन्दीवेश में

नन्द—अमात्य राक्षस, यह कौन-सी मन्त्रणा थी ? यह पत्र तुम्हीं ने लिखा है ?

राक्षस—(पत्र लेकर पढ़ता हुआ)—"सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो, इस स्त्री के साथ मुझसे आकर मिलो। मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूँ। नन्द से फिर समझ लिया जायगा"-इत्यादि। (नन्द की ओर देखकर) आश्चर्य, मैंने तो यह नहीं लिखा ! यह कैसा कुचक्र है ?

नन्द—सुवासिनी को अपने साथ लेकर नवीन राज्य की सृष्टि।

राक्षस—प्रपंच है,—और किसी का नहीं उसी ब्राह्मण चाणक्य का महाराज, सतर्क रहिये, अपने अनुकूल परिजनों पर भी, अविश्वास न कीजिये। कोई भयानक घटना होने वाली है, यह उसी का सूत्रपात है !

नन्द—इस तरह मैं प्रतारित नहीं किया जा सकता, देखो यह तुम्हारी मुद्रा है ! (मुद्रा देता है)

राक्षस देखकर सिर नीचा कर लेता है

नन्द—कृतघ्न ! बोल, उत्तर दे !

राक्षस—मैं कहूँ भी तो आप मानने ही क्यों लगे !

नन्द—तो आज तुम लोगों को भी उसी अन्धकूप में जाना होगा।

राक्षस बन्दी किया जाता है। नागरिकों का प्रवेश

राक्षस को शृङ्खला में जकड़ा हुआ देखकर इन सबों में उत्तेजना

नाग०—सम्राट्! (आपसे मगध की प्रजा प्रार्थना कर है कि नागरिक राक्षस और अन्य लोगों पर भी जो राजद द्वारा किये गये अत्याचार हैं, उनका फिर से निराक होना चाहिए।)

नन्द—क्या? तुम लोगों को मेरे न्याय में अविश्वास है

नाग०—इसके प्रमाण हैं—शकटार, वररुचि और मौर

नन्द—(इन लोगों को देखकर)—शकटार! तू अ जीवित है!

शक०—जीवित हूँ नन्द! नियति सम्राटों से भी प्रबल है

नन्द—यह मैं क्या देखता हूँ! प्रतिहार! पहले इन विद्रोहि को बन्दी करो। क्या तुम लोगों ने इन्हें छुड़ाया है?

नाग०—इनका न्याय हम लोगों के सामने किया जा जिससे हम लोगों का राज्य नियमों में विश्वास हो। सम्राट् न्याय को गौरव देने के लिये, इनके अपराध सुनने की इच्छ आपकी प्रजा रखती है।

नन्द—प्रजा की इच्छा से राजा को चलना होगा?

नाग०—हाँ, महाराज!

नन्द—क्या तुम सबके सब विद्रोही हो?

नाग०—यह, सम्राट् अपने हृदय से पूछ देखें।

शक०—मेरे सात निरपराध पुत्रों का रक्त।

नाग०—न्यायाधिकरण की आड़ में इतनी बड़ी नृशंसता!

चाणक्य—नन्द ! (शिक्षा सुनी है—फिर सिखलाने की इच्छा हुई है, इसी लिये आया हूँ । राजपद के अपवाद नन्द आज तुम्हारा विचार होगा !)

नन्द—तुम ब्राह्मण ! मेरे टुकड़ों से पले हुए ! दरिद्र ! तुम मगध के सम्राट् का विचार करोगे ! तुम सब लुटेरे हो—डाकू हो ! विद्रोही हो—अनार्य्य हो !

चाणक्य—(राजसिंहासन के पास आकर) नन्द ! तुम्हारे ऊपर इतने अभियोग हैं—महापद्म की हत्या, शकटार को बन्दी करना—उसके सातो पुत्रो को भूख से तड़पा कर मारना ! सेनापति मौर्य्य की हत्या का उद्योग—उसकी स्त्री को और वररुचि को बन्दी बनाना ! कितनी ही कुलीन कुमारियों का सतीत्व नाश—नगर भर में व्यभिचार का स्रोत बहाना ! ब्रह्मस्व और अनाथो की वृत्तियों का अपहरण ! अन्त में सुवासिनी पर अत्याचार—शकटार की एक मात्र बची हुई सन्तान, सुवासिनी, जिसे तुम अपनी घृणित पाशवृत्तिका ! ✓

नागरिक—(बीच में रोक कर हल्ला मचाते हुए)—पर्य्याप्त है ! यह पिशाच-लीला और सुनने की आवश्यकता नहीं, सब प्रमाण यहीं उपस्थित हैं ।

चन्द्र०—ठहरिये !—(नन्द से)—कुछ उत्तर दिया चाहते हैं आप ?

नहीं ।

"वध करो ! हत्या करो !"—का आतंक फैलता है

चाणक्य—तब भी कुछ समझ लेना चाहिये। नंद ! हम ब्राह्मण हैं, तुम्हारे लिये भिक्षा माँगकर तुम्हे जीवन-दान दे सकते हैं, लोगे ?

"नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी" का हल्ला

कल्याणी को बंदिनी बनाये पर्व्वतेश्वर का प्रवेश—

नन्द—आह बेटी, असह्य ! मुझे क्षमा करो। चाणक्य मैं ल्याणी के संग जंगल मे जाकर तपस्या करना चाहता हूँ।

चाणक्य—नागरिक वृंद ! आप लोग आज्ञा दें—नन्द को जाने की आज्ञा दें।

शक०—(छुरा निकाल कर नन्द की छाती में घुसेड देता है)—सात हत्याएँ हैं। यदि नन्द सात जन्मो मे मेरे ही द्वारा मारा जाय तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूँ। मगध नन्द के विना भी जी सकता है।

वररुचि—अनर्थ !

सब स्तब्ध रह जाते हैं

राक्षस—चाणक्य, मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है ?

चन्द्र०—अमात्य राक्षस का बंधन खोल दो। आज मगध के सब नागरिक स्वतन्त्र हैं।

राक्षस सुवासिनी कल्याणी का बंधन खुलता है

राक्षस—राष्ट्र इस तरह नहीं चल सकता।

चाणक्य—तब ?

राक्षस—परिषद् की आयोजना होनी चाहिये।

नागरिकवृन्द—राक्षस, वररुचि, शकटार, चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सम्मिलित परिषद् की हम घोषणा करते हैं।

चाणक्य—परन्तु उत्तरापथ के समान गणतन्त्र की योग्यता मगध में नहीं, और मगध पर विपत्ति की भी सम्भावना है। प्राचीन काल से मगध साम्राज्य रहा है, इस लिये यहाँ एक सबल और सुनियन्त्रित शासक की आवश्यकता है। आप लोगों को यह जान लेना चाहिये कि यवन अभी हमारी छाती पर हैं।

नाग०—तो कौन इसके उपयुक्त है?

चाणक्य—आप ही लोग इसे विचारिये।

शक०—हमलोगों का उद्धारकर्त्ता। उत्तरापथ के अनेक समरों का विजेता—वीर चन्द्रगुप्त।

नाग०—चन्द्रगुप्त की जय।

चाणक्य—अस्तु, बढ़ो चन्द्रगुप्त। सिंहासन शून्य नहीं रह सकता। अमात्य राक्षस! सम्राट् का अभिषेक कीजिये।

मृतक हटाये जाते हैं कल्याणी दूसरी ओर जाती है राक्षस चंद्रगुप्त का हाथ पकड़ कर सिंहासन पर बैठाता है

चाणक्य—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय! मगध की जय!

सब नाग०—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय! मगध की जय!

चाणक्य—*मगध के स्वतन्त्र नागरिकों को बधाई है! आज* आप लोगों के राष्ट्र का नवीन जन्म दिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है, परन्तु

व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है जहाँ दूसरो की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमो का मूल है। वत्स चंद्रगुप्त! स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है। मंत्रि-परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।

"सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय" का घोष

पटाक्षेप

पर्व्व०—पर्व्वतेश्वर ।

कल्याणी—मैं हूँ कल्याणी, जिसे नगर अवरोध के समय तुमने बन्दी बनाया था ।

पर्व्व०—राजकुमारी ! नन्द की दुहिता तुम हो ?

कल्याणी—हाँ पर्व्वतेश्वर ।

पर्व्व०—तुम्हीं से मेरा ब्याह होने वाला था ?

कल्याणी—अब यम से होगा !

पर्व्व०—नहीं सुदरी, ऐसा भरा हुआ यौवन !

कल्याणी—लुटेरे ! सब छीन कर अपमान भी !

पर्व्व०—तुम नहीं जानती हो, मगध का आधा राज्य मेरा है ! तुम मेरी प्रियतमा होकर सुखी रह सकोगी।

कल्याणी—मैं अब सुख नहीं चाहती। सुख अच्छा है या दु ख—मैं स्थिर न कर सकी। तुम मुझे कष्ट न दो!

पर्व्व०—हमारे तुम्हारे मिल जाने से मगध का पूरा राज्य हम लोगों का हो जायगा। उत्तरापथ की सकट मयी परिस्थिति से अलग रह कर यहीं शांति मिलेगी।

कल्याणी—चुप रहो !

पर्व्व०—सुन्दरी, तुम्हें देख लेने पर ऐसा नहीं हो सकता !

उसे पकड़ना चाहता है वह भागती है परन्तु पर्व्वतेश्वर उसे पकड़ ही लेता है। कल्याणी उसीके बगल से छुरा निकाल कर उसका वध करती है—चीत्कार सुनकर चद्रगुप्त आ जाता है दूसरी ओर से चाणक्य।

चद्रगुप्त—कल्याणी ! कल्याणी ! यह क्या !!

कल्याणी—वही जो होना था। चन्द्रगुप्त ! यह पशु मेरा अपमान करना चाहता था—मुझे भ्रष्ट करके, अपनी संगिनी बना कर पूरे मगध पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु मौर्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को—वह था चंद्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त—क्या यह सच है, कल्याणी ?

कल्याणी—हाँ यह सच है। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए, इस लिये उस प्रणय को—उस प्रेम पीडा को, मैं पैरो से कुचल कर—दबा कर—खड़ी रही। अब मेरे लिये कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा, पिता! लो मैं भी आती हूँ।

(अचानक छुरी मार कर आत्महत्या करती है। चन्द्रगुप्त उसे गोद में उठा लेता है।)

चाणक्य—चद्रगुप्त आज तुम निष्कण्टक हुए।

चंद्र०—गुरुदेव! इतनी क्रूरता!

चाणक्य—महत्वाकाक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है! चलो अपना काम करो, विवाद करना तुम्हारा काम नहीं। अब तुम स्वच्छद होकर दक्षिणापथ जाने की आयोजना करो।

चंद्र०—कल्याणी—एक निर्दोष मणि! सरल बालिका!

२

पथ में राक्षस और सुवासिनी

सुवा०—राक्षस! मुझे क्षमा करो!

राक्षस—क्या सुवासिनी, यदि यह बाधा एक क्षण और रह रहती तो क्या हम लोग इस सामाजिक नियम के बंधन से बँध न गये होते! अब क्या हो गया?

सुवा०—अब पिताजी की अनुमति आवश्यक हो गई है।

राक्षस—(व्यंग से)—क्यों? क्या अब वह तुम्हारे ऊपर अधिक नियन्त्रण रखते हैं? क्या उनको तुम्हारे विगत जीवन से कुछ सम्पर्क नहीं? क्या

सुवासिनी—अमात्य! मैं अनाथ थी, जीविका के लिए मैंने चाहे कुछ भी किया हो, पर, स्त्रीत्व नहीं बेचा। तुम्हारे लिए मगध में कुलकन्यकाओं की कमी न होगी।

राक्षस—सुवासिनी, मैंने सोचा था, तुम्हारे अंक में सिर रख कर विश्राम करते हुए मगध की भलाई से विपथगामी न हूँगा। पर तुमने ठोकर मार दिया! क्या तुम नहीं जानतीं कि मेरे भीतर एक दुष्ट प्रतिभा सदैव सचेष्ट रहती है? अवसर न दो, उसे न जगाओ! मुझे पाप से बचाओ।

सुवा०—मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नहीं करती। किन्तु अब इसका प्रस्ताव पिता जी से करो। तुम मेरे रूप और गुण के ग्राहक हो और सच्चे ग्राहक हो, परन्तु राक्षस! मैं जानती हूँ कि यदि ब्याह छोड़ कर अन्य किसी भी प्रकार से मैं तुम्हारी हो

मौर्य—(क्रोध से)—क्या कहा, यवनी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! हम लोग चलते हैं। देखूँ किसकी सामर्थ्य है जो रोके। अपमान से जीवित रहना मौर्य नहीं जानता! चलो—

दोनों का प्रस्थान

चाणक्य और कात्यायन को छोड़ कर सब जाते हैं

कात्या०—विष्णुगुप्त, तुमने समझ कर ही तो ऐसा किया होगा। फिर भी मौर्य का इस तरह चले जाना चन्द्रगुप्त को—

चाणक्य—बुरा लगेगा? क्यों? भला लगने के लिए मैं कोई काम नहीं करता कात्यायन! भलाई तो मेरे कामों की कसौटी है। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी चले जाओ! बको मत!

कात्यायन का प्रस्थान

चाणक्य—कारण समझ में नहीं आता—यह वात्याचक्र क्यों?—(विचरता हुआ)—क्या कोई नवीन अध्याय खुलने वाला है? अपनी विजया पर मुझे विश्वास है, क्योंकि यह नियन्त्रित राजपद्धति वर्तमान के लिये सर्वथा उपयुक्त है। फिर यह क्या?—(सोचता है)

सुवासिनी का प्रवेश

सुवा०—विष्णुगुप्त!

चाणक्य—कहो सुवासिनी!

सुवा०—अभी परिषद्-गृह से जाते हुए पिताजी बहुत दुखी दिखाई दिये, तुमने अपमान किया क्या?

चाणक्य—यह तुमसे किसने कहा? इस प्रसंग के छेड़ने

से साम्राज्य का कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मौर्यों का जो कुछ है, वह मेरे दायित्व पर है। अपमान हो या मान, मैं उसका उत्तरदायी हूँ। और, पितृव्य-तुल्य शकटार को मैं अपमानित करूँगा, यह तुम्हे कैसे विश्वास हुआ ?

सुवा०—तो राक्षस ने ऐसा क्यो ?

चाणक्य—कहा, ऐ ? सो तो कहना ही चाहिये। और तुम्हारा भी उस पर विश्वास होना आवश्यक है, क्यो न सुवासिनी ?

सुवा०—विष्णुगुप्त ! मै एक समस्या मे डाल दी गई हूँ।

चाणक्य—तुम स्वयं पड़ना चाहती हो, कदाचित् यह ठीक भी है।

सुवा०—व्यग न करो, तुम्हारी कृपा मुझ पर होगी ही, मुझे इसका विश्वास है।

चाणक्य—मैं तुमसे बाल्यकाल से परिचित हूँ, सुवासिनी ! तुम खेल मे भी हारने के समय रोते हुए हँस दिया करतीं और तब मैं हार स्वीकार कर लेता। इधर तो अभिनय का अभ्यास भी बढ़ गया है ! तब तो · · · (देखने लगता है)

सुवा०—यह क्या विष्णुगुप्त, तुम ससार को अपने वश में करने का संकल्प रखते हो। फिर अपने को नही ? देखो दर्पण लेकर—तुम्हारी आँखो मे तुम्हारा यह कौन-सा नवीन चिन्ह है।

प्रस्थान

चाणक्य—क्या ? मेरी दुर्बलता ? तो अच्छा है, यही

अवसर है! दूँगा तब भी चन्द्रगुप्त का ही कल्याण करते-करते कौन है?

दौवारिक—(प्रवेश करके)—जय हो आर्य्य, रथ पर मालविका आई हैं।

चाणक्य—उसे शीघ्र मेरे पास लिवा लाओ!

दौवारिक का प्रस्थान—एक चर का प्रवेश

चर—आर्य्य, सम्राट के पिता और माता दोनों व्यक्ति रथ पर अभी बाहर गये हैं। (जाता है)

चाणक्य—जाने दो! इनके रहने से चन्द्रगुप्त के एकाधिपत्य में बाधा होती। स्नेहातिरेक से वह कुछ का कुछ कर बैठता।

दूसरे चर का प्रवेश

दूसरा—(प्रणाम करके)—जय हो आर्य्य, बाल्हीक में नई हलचल है। विजेता सिल्यूकस अपनी पश्चिमी राजनीति से स्वतन्त्र हो गया है, अब वह सिकन्दर के पूर्वी प्रान्तों की ओर दत्तचित्त है। बाल्हीक की सीमा पर नवीन यवन सेना के शस्त्र चमकने लगे हैं।

चाणक्य—(चौंक कर)—और गांधार का समाचार?

दूसरा०—अभी कोई नवीनता नहीं है।

चाणक्य—जाओ!—(चर का प्रस्थान)—क्या उसका भी समय आ गया? तो ठीक है। ब्राह्मण! अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हो! कुछ चिन्ता नहीं, सब सुयोग आप ही चले आ रहे हैं।

ऊपर देख कर हँसता है मालविका का प्रवेश

माल०—आर्य्य, प्रणाम करती हूँ। सम्राट ने श्रीचरणों में सविनय प्रणाम करके निवेदन किया है कि आपके आशीर्वाद से दक्षिणापथ मे अपूर्व सफलता मिली, किन्तु सुदूर दक्षिण जाने को आपका निषेध सुन कर लौटा आ रहा हूँ। सीमान्त के राष्ट्रों ने भी मित्रता स्वीकार कर ली है।

चाणक्य—मालविका, विश्राम करो। सब बातों का विवरण एक साथ ही लूँगा।

माल०—परन्तु आर्य्य, स्वागत का कोई उत्साह राजधानी में नहीं!

चाणक्य—मालविका, पाटलिपुत्र षड्यन्त्रों का केन्द्र हो रहा है। सावधान! चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा तुम्ही को करनी होगी!

४

मुकुलेश में चन्द्रगुप्त

चन्द्र०—विजया की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओं की नहीं। मन ऊब सा गया है। झंझटों से घड़ी भर अवकाश नहीं। गुरुदेव और क्या चाहते हैं समझ में नहीं आता। इतनी उदासी क्यों? मालविका!

माल०—(प्रवेश करके)—सम्राट की जय हो!

चन्द्र०—मैं सबसे विभिन्न, एक भय प्रदर्शन-सा बन गया हूँ कोई मेरा अन्तरंग नहीं, तुम भी मुझे सम्राट कह कर पुकारती हो

माल०—देव, फिर मैं क्या कहूँ?

चन्द्र०—स्मरण आता है—मालव का उपवन और उसमें अतिथि के रूप में मेरा रहना?

माल०—सम्राट, अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने हैं!

चन्द्र०—संघर्ष! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़ कर देखो मालविका! आशा और निराशा का युद्ध, भावों का अभाव द्वन्द्व, कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची रिक्त चिह्न लगा देता है। मालविका, तुम मेरी ताम्बूल देनी नहीं हो, मेरे विश्वास की, मित्रता की प्रतिकृति हो! तो, मैं दरिद्र हूँ कि नहीं, तुमसे मेरा कोई रहस्य गोपनीय नहीं। हृदय में कुछ है कि नहीं, टटोलने से भी नहीं जान पड़ता।

माल०—आप महापुरुष हैं, साधारण जन सुलभ दुर्बलता न

होनी चाहिए आपमें। देव ! बहुत दिनों पर मैंने एक माला बनाई है—(माला पहनाती है)

चन्द्र०—मालविका, इन फूलों के रस तो भौरे ले चुके हैं !

माल०—निरीह कुसुमों पर दोपारोपण क्यो ? उनका काम है सौरभ बिखेरना, यह उनका मुक्त दान है। उसे चाहे भ्रमर ले या पवन।

चन्द्र०—परन्तु भ्रमर ही धृष्ट है, क्योकि उसका व्यक्तिगत स्वार्थ है। पवन का प्रतिग्रह निःस्वार्थ है। पवित्र है। कुछ गाओ तो मन बहल जाय।

मालविका गाती है—

मधुप कब एक कली का है !
पाया जिसमे प्रेम रस सौरभ और सुहाग
बेकल हो उस कली से मिलता भर अनुराग
विहारी कुञ्जगली का है !
कुसुम धूल से धूसरित चलता है उस राह
काँटो मे उलझा तदपि रही लगन की चाह
बावला रंगरली का है !
हो मल्लिका सरोजिनी या यूथी का पुञ्ज
अलि को केवल चाहिए सुखमय क्रीड़ा-कुञ्ज
मधुप कब एक कली का है !

चन्द्र०—मालविका, मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है, वेगवान है।

माल०—उसका निग्रह करना ही महापुरुषों का स्वभाव है देव !

प्रतिहारी का प्रवेश और सकेत—मालविका उससे बात करके लौटती है

चन्द्र०—क्या है ?

माल०—कुछ नहीं, कहती थी कि यह प्राचीन राजमन्दिर अभी परिष्कृत नहीं। इस लिये मैंने चन्द्रसौध में आप के शयन का प्रबन्ध करने के लिए कह दिया है।

चन्द्र०—जैसी तुम्हारी इच्छा—(पान करता हुआ)—कुछ और गाओ मालविका! आज तुम्हारे स्वर में स्वर्गीय मधुरिमा है।

मालविका गाती है—

बज रही बंशी आठोयाम की
अब तक गूँज रही है बोली प्यारे मुख अभिराम की।
हुए चपल मृगनैन मोह वश बजी विपंची काम की
रूप सुधा के दो दृग प्यालों ने ही मति बेकाम की।

बज रही बंशी०—

कञ्चुकी का प्रवेश

कञ्चुकी—जय हो देव, शयन का समय हो गया।

प्रतिहारी और कञ्चुकी के साथ चन्द्रगुप्त का प्रस्थान।

माल०—जाओ प्रियतम! सुखी जीवन बिताने के लिये, और मैं रहती हूँ चिर-दुःखी जीवन का अंत करने के लिये। जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल उत्तर। आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है—"आज घातक इस शयन गृह में आवेंगे, इस

लिये चन्द्रगुप्त यहाँ न सोने पावे, और वे षड्यंत्रकारी पकड़े जायँ।"
(शय्या पर बैठ कर)—यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ओह,
आज प्राणों मे कितनी मादकता है! मैं .... कहाँ हूँ? कहाँ?
स्मृति, तू मेरी तरह सो जा! अनुराग, तू रक्त से भी
रंगीन बन जा!

गाती है—

ओ मेरी जीवन की स्मृति! ओ अन्तर के आतुर अनुराग!
बैठ गुलाबी विजन उषा मे गाते कौन मनोहर राग?
चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पनमय तान
यों अधीरता से न मींड़ लो अभी हुए हैं पुलकित प्रान।
कबका है यह प्रेम तुम्हारा युगल मूर्ति की बलिहारी
यह उन्मत्त विलास बता दो कुचलेगा किसकी क्यारी?
इस अनन्तता निधि के नाविक, हे मेरे अनङ्ग अनुराग!
पाल सुनहला बन, तनती है स्मृति, यों उस अतीत में जाग।
कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर
आह! तुम्हारे निर्दय डाँड़ो से होती हैं लहरें चूर।
देख नहीं सकते तुम दोनों चकित निराशा है भीमा
बहको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नवसीमा?

शयन

५

प्रभात—राजमन्दिर का एक प्रान्त

चन्द्र०—(अकेले टहलता हुआ)—चतुर सेवक के समान संसार को जगा कर अन्धकार हट गया। रजनी की स्तब्धता काकली से चंचल हो उठी है। नीला आकाश स्वच्छ होने लगा है। निद्राक्लान्त निशा उषा की शुभ्र चादर ओढ़ कर नींद की गोद में लेटने चली है। यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्म्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्म्मक्षेत्र क्या है? जीवन संग्राम! किन्तु भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी सत्ता एक कठपुतली-सी है। तो फिर मेरे पिता, मेरी माता, इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गये, मैं देखता हूँ कि नागरिक तो क्या, मेरे आत्मीय भी आनन्द मनाने से वंचित किये गये। यह परतन्त्रता कब तक चलेगी।

प्रतिहारी—(प्रवेश करके)—जय हो देव!

चन्द्र०—आर्य्य चाणक्य को शीघ्र लिवा लाओ!

प्रतिहारी का प्रस्थान

चन्द्र०—(टहलते हुए)—प्रतिकार आवश्यक है।

चाणक्य का प्रवेश

चन्द्र०—आर्य्य, प्रणाम!

चाणक्य—कल्याण हो आयुष्मन्, आज तुम्हारा प्रणाम कुछ भारी सा है!

चन्द्र०—मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

चाणक्य—यह तो मैं पहले ही से समझता था! तो तुम अपने स्वागत के लिये लड़कों के सदृश रूठे हो?

चन्द्र०—नहीं आर्य्य, मेरे माता पिता—मै जानना चाहता कि उन्हे किसने निर्वासित किया।

चाणक्य—जान जाओगे तो उसका वध करोगे! क्यो?

हँसता है

चन्द्र०—हँसिये मत! गुरुदेव! आपकी मर्य्यादा रखनी चाहिये, यह मैं जानता हूँ। परन्तु वे मेरे माता-पिता थे, यह आप को भी जानना चाहिये।

चाणक्य—तभी तो मैंने उन्हें उपयुक्त अवसर दिया। अब उन्हें आवश्यकता थी शांति की, उन्होने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया है। इसमें खेद करने की कौन बात है?

चन्द्र०—यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथो में रखना चाहते हैं!

चाणक्य—साम्राज्य चलाने की इच्छा न थी, चन्द्रगुप्त! मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनन्दसमुद्र मे शांतिद्वीप का अधिवासी ब्राह्मण—चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्य-श्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म्म था, संतोष धन था। उस अपनी ब्राह्मण की जन्म-भूमि को छोड़ कर कहाँ आ गया! सौहार्द के स्थान पर कुचक्र, फूलों के प्रति-

निधि लौटे, प्रेम के स्थान में भय। ज्ञानामृत के परिवर्तन में कुमन्त्रणा! पतन और कहाँ तक हो सकता है! ले लो मौर्य चन्द्रगुप्त! अपना अधिकार, छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छायाचित्र, किसी काल्पनिक महत्त्व के पीछे, भ्रमपूर्ण अनुसंधान करता दौड़ रहा हूँ! शांति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया! अभिमान-वश, दुस्तर प्रहेलिका समुद्र के समान संसार का संतरण करना चाहता था! आज विदित हुआ—मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ!

प्रस्थान

चन्द्र०—जाने दो!—(दीर्घ निश्वास लेकर)—तो क्या मैं असमर्थ हूँ?—ऊँह, सब हो जायगा!

सिंहरण—(प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो! क्षुद्र विद्रोही और षड्यन्त्रकारी पकड़े गए हैं। एक बड़ा दुःखद घटना भी हो गई है!

चन्द्रगुप्त—(चौंककर) क्या?

सिंह०—मालविका की हत्या (गद्गद कण्ठ से)—आपका परिच्छद पहनकर वह आपही की शय्या पर लेटी थी।

चन्द्रगुप्त—तो क्या, उसने इसीलिये मेरे शयन का प्रबन्ध दूसरे प्रकोष्ठ में किया! आह! मालविका!

सिंह०—आर्य चाणक्य की सूचना पाकर नायक पूरे गुल्म के साथ राजमंदिर की रक्षा के लिए प्रस्तुत था। एक छोटा-सा

युद्ध होकर वे हत्यारे पकड़े गये। परंतु उनका नेता राक्षस निकल भागा।

चन्द्र०—क्या? राक्षस उनका नेता था!

सिंह०—हाँ सम्राट्! गुरुदेव बुलाये जायँ?

चन्द्र०—वही तो नहीं हो सकता, वे चले गये! कदाचित् न लौटेंगे।

सिंह०—ऐसा क्यों? क्या आपने कुछ कह दिया?

चन्द्रगुप्त—हाँ सिंहरण! मैंने अपने माता-पिता के चले जाने का कारण पूछा था।

सिंह०—(निश्वास लेकर) तो नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है! सम्राट् मैं गुरुदेव को खोजने जाता हूँ।

चन्द्रगुप्त—(विरक्ति से)—जाओ, ठीक है—अधिक हर्ष. अधिक उन्नति के बाद ही तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है!

सिंहरण का प्रस्थान

चन्द्र०—पिता गए, माता गई, गुरुदेव गये, कंधे से कंधा भिड़ा कर प्राण देनेवाला चिरसहचर सिंहरण गया! तो भी चन्द्रगुप्त को रहना पड़ेगा, और रहेगा! परन्तु मालविका! आह स्वर्गीय कुसुम!

चिंतित भाव से प्रस्थान

६

सिंधुतट—पर्णकुटीर। चाणक्य और कात्यायन

चाणक्य—कात्यायन, सो नहीं हो सकता। मैं अब मन्त्रि नहीं ग्रहण करने का। तुम यदि किसी प्रकार मेरा रहस्य खोल दोगे, तो मगध का अनिष्ट ही कराओगे।

कात्या०—तब मैं क्या करूँ? चाणक्य, मुझे तो अब इस राजकाज में पड़ना अच्छा नहीं लगता।

चाणक्य—जब तक गांधार का उपद्रव है, तब तक तुम्हें बाध्य होकर करना पड़ेगा। बताओ, नया समाचार क्या है?

कात्या०—राक्षस सिल्यूकस की कन्या को पढ़ाने के लि वहाँ रहता है, और यह सारा कुचक्र उसी का है। वह इन दि बाल्हीक की ओर गया है। मैं अपना वार्तिक पूरा कर चुक इसी लिए मगध से अवकाश लेकर आया था। चाणक्य, अ मैं मगध जाना चाहता हूँ। यवन शिविर में अब मेरा जान असम्भव है।

चाणक्य—जितना शीघ्र हो सके, मगध पहुँचो। मैं सिंहरण को ठीक रखता हूँ। तुम चन्द्रगुप्त को भेजो। सावधान, उसे न मालूम हो, कि मैं यहाँ हूँ। अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा। देखो, शकटार और तुम्हारे भरोसे मगध रहा। हाँ कात्यायन, यदि सुवासिनी को भेजते तो कार्य में आशातीत सफलता होती। समझे?

कात्यायन—(हँस कर)—यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई

कि तुम·····सुवासिनी ·· अच्छा विष्णुगुप्त! गार्हस्थ्य जीवन कितना श्रेय और प्रेय है!

चाणक्य—मूर्ख हो, अब हम तुम साथ ही व्याह करेंगे!

कात्यायन—मैं? मुझे नहीं . मेरी गृहिणी तो है!

चाणक्य—(हँस कर)—एक व्याह और सही। अच्छा बताओ, काम कहाँ तक हुआ?

कात्यायन—(पत्र देता हुआ)—हाँ यह लो, यवन-शिविर का विवरण है। परन्तु, विष्णुगुप्त, एक बात कहे बिना न रह सकूँगा। वह यवन-बाला सिर से पैर तक आर्य्यसंस्कृति में पगी है। उसका अनिष्ट?

चाणक्य—(हँसकर)—कात्यायन, तुम सच्चे ब्राह्मण हो! यह करुणा और सौहार्द्र का उद्रेक ऐसे ही हृदयों में होता है। परन्तु मैं—निष्ठुर! हृदयहीन! मुझे तो केवल अपने हाथों खड़ा किए हुए एक साम्राज्य का दृश्य देख लेना है।

कात्या०—फिर भी चाणक्य, उसका सरल मुखमण्डल! उस लक्ष्मी का अमंगल!

चाणक्य—(हँस कर)—तुम पागल तो नहीं हो गये हो?

कात्या०—तुम हँसो मत चाणक्य! तुम्हारा हँसना तुम्हारे क्रोध से भी भयानक है! प्रतिज्ञा करो कि उसका अनिष्ट न करूँगा। बोलो!

चाणक्य—क्यों कात्यायन! अलक्षेन्द्र कितने विकट परि-श्रम से भारतवर्ष के बाहर किया गया—यह तुम भूल गये?

अभी है कितने दिन की बात ! अब इस सिल्यूकस को क्या हुआ जो यह चला आया ! तुम नहीं जानते कात्यायन, इसी सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त की रक्षा की थी ! नियति अब इन्हीं दोनों को एक दूसरे के विपक्ष में खड्ग खींचे हुए खड़ा कर रही है !

कात्या०—कैसे आश्चर्य की बात है !

चाणक्य—परन्तु इससे क्या ! वही तो होकर रहेगा, जिसे मैंने स्थिर कर लिया है ! वर्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलद पटल में बिजली के समान नाच उठती है ! फिर मैं क्या करूँ ?

कात्या०—तुम निष्ठुर हो !

चाणक्य—अच्छा तुम सदय होकर एक बात कर सकोगे, बोलो ! तुम चन्द्रगुप्त और उस यवन-बाला के परिणय में आचार्य बनोगे ?

कात्या०—क्या कह रहे हो ! यह हँसी !

चाणक्य—यही है तुम्हारे दया की परीक्षा—देखूँ तुम क्या करते हो ! क्या तुममें यवन बाला का अमंगल है ?

कात्या०—(सोच कर) मंगल है ! मैं प्रस्तुत हूँ।

चाणक्य—(हँस कर) तब तुम निश्चय ही एक सहृदय व्यक्ति हो !

कात्या०—अच्छा तो मैं जाता हूँ।

चाणक्य—हाँ जाओ। स्मरण रखना, यह हम लोगों के

वर्ष है ! मुझे आज आम्भीक से मिलना है।
हूँ, क्या करता है।

कात्यायन का प्रस्थान—चर का प्रवेश

चर—महामात्य की जय हो !

चाणक्य—इस समय जय की बड़ी आवश्यकता है। ान्भीक को यदि जय कर सका तो सर्वत्र जय है ! बोलो, ाम्भीक ने क्या कहा ?

चर—वे स्वय आ रहे हैं।

चाणक्य—आने दो, तुम जाओ।

चर का प्रस्थान—आम्भीक का प्रवेश

आम्भीक—प्रणाम, ब्राह्मण देव !

चाणक्य—कल्याण हो ! राजन्, तुम्हें भय तो नहीं लगता ? क दुर्नाम मनुष्य हूँ !

आम्भीक—नहीं आर्य्य, आप कैसी बात कहते हैं !

चाणक्य—तो ठीक है। स्मरण है, इसी तक्षशिला के मठ क दिन मैंने कहा था—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य्यजाति के कगारे पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है !

आम्भीक—स्मरण है।

ााणक्य—तुम्हारी भूल ने कितना कुत्सित दृश्य दिखाया— ी सम्भवत. तुम न भूले होगे ?

प्राम्भीक—नहीं।

चाणक्य—तुम जानते हो कि चन्द्रगुप्त ने दक्षिणापथ के स्वर्णगिरि से पञ्चनद तक, सौराष्ट्र से बंग तक, एक महान साम्राज्य स्थापित किया है। यह साम्राज्य मगध का नहीं है, यह आर्य साम्राज्य है। उत्तरापथ के सब प्रमुख गणतंत्र मालव क्षुद्रक और यौधेय आदि सिंहरण के नेतृत्व में इस साम्राज्य के अंग हैं। केवल तुम्हीं इससे अलग हो। इस द्वितीय यवन आक्रमण से तुम भारत के द्वार की रक्षा कर लोगे, या पहले ही के समान उत्कोच लेकर, द्वार खोल कर, सब मगधों से अलग हो जाना चाहते हो?

आम्भीक—आर्य्य, वही त्रुटि बारंबार न होगी।

चाणक्य—तब साम्राज्य झेलम-तट की रक्षा करेगा। सिन्धु तट का भार तुम्हारे ऊपर रहा।

आम्भीक—अकेले मैं यवनों का आक्रमण रोकने में असमर्थ हूँ।

चाणक्य—फिर उपाय क्या है?

नेपथ्य से जयघोष। आम्भीक चकित होकर देखने लगता है।

चाणक्य—क्या है, सुन रहे हो?

आम्भीक—समझ में नहीं आया। (नेपथ्य की ओर देखकर) यह एक स्त्री आगे आगे कुछ गाती हुई आ रही है और उसके साथ बड़ी-सी भीड़—(कोलाहल समीप होता है)

चाणक्य—आओ, हम लोग अलग हट कर देखें। (दोनों अलग छिप जाते हैं)

जयपताका लिये अलका का गाते हुए भीड़ के साथ प्रवेश

आम्भीक—यह अलका है। तक्षशिला में उत्तेजना फैलाती हुई—यह अलका।

चाणक्य—हाँ, आम्भीक! तुम उसे बन्दी बनाओ, मुँह बन्द करो।

आम्भीक—(कुछ सोचकर) असम्भव! मैं भी साम्राज्य में सम्मिलित होऊँगा।

चाणक्य—यह मैं कैसे कहूँ? मेरी लक्ष्मी—अलका—ने आर्य्यगौरव के लिए क्या क्या कष्ट नहीं उठाये! वह भी तो इसी धरा की बालिका है। फिर तुम तो पुरुष हो, तुम्हीं सोच देखो।

आम्भीक—व्यर्थका व्यक्तिगत अभिमान अब मुझे आर्य्यावर्त्त कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा। आर्य्य चाणक्य, मैं आर्य्यसाम्राज्य के बाहर नहीं हूँ।

चाणक्य—तब तक्षशिला दुर्ग पर मागधसेना अधिकार होगी। यह तुम सहन करोगे?

आम्भीक सिर नीचा करके विचारता है

चाणक्य—क्षत्रिय! कह देना और बात है, करना और!

आम्भीक—(आवेश में)—हार चुका ही हूँ, पराधीन हो ही चुका हूँ। अब स्वदेश के अधीन होने में उससे अधिक कलक तो मुझे लगेगा नहीं, आर्य्य चाणक्य!

चाणक्य—तो इस गांधार और पचनद का शासन-सूत्र होगा अलका के हाथ में और तक्षशिला होगी उसकी राजधानी, बोलो स्वीकार है?

उसी की पूजा होगी। भाई! तक्षशिला मेरी नहीं और तुम भी नहीं, तक्षशिला आर्य्यावर्त्त का एक भूभाग है, वह आर्य्यावर्त्त की होकर ही रहे, इसके लिए मर मिटेंगे। फिर उसके कम तुम्हारा ही नाम अंकित होगा। मेरे पिता स्वर्ग में इन्द्र प्रतिस्पर्धा करेंगे। वहाँ की अप्सरायें विजय माला लेकर खड़ी होंगी, सूर्य्यमण्डल मार्ग बनेगा और उज्ज्वल आलोक से मण्डित होकर गांधार का राजकुल अमर हो जायगा।

चाणक्य—साधु! अलके, साधु!

आम्भीक—(खड्ग खींचकर)—खड्ग की शपथ—मैं कर्त्तव्य से च्युत न होऊँगा।

सिंह०—(उस आलिंगन करके)—मित्र आम्भीक! मनुष्य साधारण धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।

चाणक्य और आम्भीक का प्रस्थान

सिंह०—अलका, सम्राट् किस मानसिक वेदना में दिन बिताते होंगे!

अलका—वे वीर हैं मालव, दरअसल कहीं सशंक होकर पचनद पर ही हल्ला न बोल दें! उन्हें विश्वास है कि मेरा कुछ कार्य्य है, उसकी साधना के लिए प्रकृति, अदृष्ट, दैव या ईश्वर, कुछ न कुछ अवलंब जुटा ही देगा। वह चाहे चाणक्य हो या मालव।

सिंह—अलका, उस प्रचंड पराक्रम को मैं जानता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि सम्राट् मनुष्य हैं। अपने से बार

बार सहायता करने के लिए कहने मे, मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है। यह सौहार्द और विश्वास का सुन्दर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो संघर्ष से बचने का, किन्तु जीवन अपना संग्राम अंध होकर लड़ता है। कहता है—अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हों, आवें और अपना प्रमाण दें।

दोनों का प्रस्थान

७

कपिशा में एलेग्जेंड्रिया का राजमन्दिर

कार्नेलिया और उसकी सखी

कार्ने०—बहुत दिन हुए देखा था!—यही भारतवर्ष! वही निर्म्मल ज्योति का देश, पवित्र भूमि, अब हत्या और लूट से वीभत्स बनाई जायगी—ग्रीक सैनिक इस शस्यश्यामला पृथ्वी को रक्तरंजित बनावेंगे! पिता अपने साम्राज्य से संतुष्ट नहीं, आशा उन्हें दौड़ावेगी। पिशाची की छलना में पड़कर लाखों प्राणियों का नाश होगा। और, सुना है यह युद्ध होगा चन्द्रगुप्त से!

सखी—सम्राट् तो आज स्कंधावार में जाने वाले हैं!

राक्षस का प्रवेश

राक्षस—आयुष्मती! मैं आज आ गया हूँ, सुरक्षित सैन्य शीघ्र ही आ पहुँचा चाहती है।

कार्ने०—नमस्कार! तुम्हारे देश में तो सुना है कि ब्राह्मण जाति बड़ी तपस्वी और त्यागी है।

राक्षस—हाँ कल्याणी! वह मेरे पूर्वजों का गौरव है। किन्तु हम लोग तो बौद्ध हैं।

कार्ने०—और तुम उसके ध्वंसावशेष हो। मेरे यहाँ ऐसे ही लोगों को देशद्रोही कहते हैं! तुम्हारे यहाँ इसे क्या कहते हैं?

राक्षस—राजकुमारी! मैं कृतघ्न नहीं, मेरे देश में कृतज्ञता पुरुषत्व का चिन्ह है। जिसके अन्न से जीवन निर्वाह होता है, उसका कल्याण "

कार्नें०—कृतज्ञता पाश है ; मनुष्य की दुर्वलताओं के फंदे उसे और भी दृढ़ करते हैं। परन्तु जिस देश ने तुम्हे उत्पन्न कर पालन करके पूर्व उपकारो का बोझ तुम्हारे ऊपर डाला है, उसे विस्मृत करके क्या तुम कृतघ्न नहीं हो रहे हो ? सुकरात का तर्क तुमने पढ़ा है ?

राक्षस—तर्क और राजनीति मे भेद है। मैं प्रतिशोध चाहता हूँ। राजकुमारी ! कर्णिक ने कहा है—

कार्नें०—कि सर्वनाश कर दो ! यदि ऐसा है, तो मैं तुम्हारी राजनीति नहीं पढ़ना चाहती।

राक्षस—पाठ थोड़ा अवशिष्ट है। उसे भी समाप्त कर लीजिये, आपके पिता की आज्ञा है।

कार्नें०—मै तुम्हारे उशना और कर्णिक से ऊब गई। .., जाओ !

राक्षस का प्रस्थान

कार्नें०—एलिस ! इन दिनो जो ब्राह्मण मुझे रामायण पढाता था, वह कहाँ गया ? उसने व्याकरण पर अपनी नई टिप्पणी प्रस्तुत की है। कितना सरल और विद्वान है।

एलिस— वह चला गया राजकुमारी।

कार्नें०—बड़ा ही निर्लोभी सच्चा ब्राह्मण था !— (सिल्यूकस का प्रवेश)—अरे पिता जी।

सिल्यू०—हाँ बेटी ! अब तुमने अध्ययन बन्द कर दिया, ऐसा क्यो ? अभी वह राक्षस मुझसे कह रहा था।

कार्ने०—पिता जी ! उसके देश ने उसका नाम बुद्ध समझ कर ही रक्खा है—राक्षस—मैं उससे डरती हूँ।

सिल्यू०—बड़ा विद्वान है बेटी ! मैं उसे भारतीय प्रदेश का सत्रप बनाऊँगा।

कार्ने—पिता जी ! वह पाप की मलीन छाया है ! उसके भौंहों में कितना अन्धकार है, आप देखते नहीं । उससे अलग रहिये । अविश्वास की जीवित प्रतिमा की उपासना से विरत हो कर विश्राम लीजिये । विजया की प्रवचना में अपने को न हारिये । महत्त्वाकांक्षा के दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है । डिमास्थनीज ने

सिल्यू०—तुम्हारे दार्शनिकों से तो विरक्ति हो गई है। क्या ही अच्छा होता कि ग्रीस में दार्शनिक न उत्पन्न होकर, केवल योद्धा ही उत्पन्न होते !

कार्न०—सो तो होता ही है। मेरे पिता किससे कम वीर हैं ! मेरे विजेता पिता ! मैं भूल करती हूँ, क्षमा कीजिये।

सिल्यू०—यही तो मेरी बेटी ! ग्रीक रक्त वीरता के परमाणु से संगठित है। तुम चलोगी युद्ध देखने ? सिन्धुतट के स्कन्धावार में रहना।

कार्ने०—चलूँगी।

सिल्यू०—अच्छा तो प्रस्तुत रहना। आम्भीक—तक्षशिला का राजा—इस युद्ध में तटस्थ रहेगा, आज उसका पत्र आया है। और राक्षस कहता था कि चाणक्य—चन्द्रगुप्त का मन्त्री—उससे

क्रुद्ध होकर कहीं चला गया है। पंचनद में चंद्रगुप्त का कोई सहायक नहीं। बेटी, सिकन्दर से बड़ा साम्राज्य—उससे बड़ी विजय! कितना उज्ज्वल भविष्य है!

कार्नें०—हाँ पिता जी!

सिल्यू०—हाँ पिता जी!—उल्लास की एक रेखा भी नहीं—इतनी उदासी! तू पढ़ना छोड़ दे। मैं कहता हूँ कि तू दार्शनिक होती जा रही है—ग्रीकरक्त!

कार्नें०—वही तो कह रही हूँ। आपही तो कभी पढ़ने के लिये कहते हैं, कभी छोड़ने के लिये!

सिल्यू०—तब ठीक है, मैं ही भूल कर रहा हूँ।

प्रस्थान

८

चाणक्य की झोंपड़ी

चाणक्य और सुवासिनी

चाणक्य—तो सुवासिनी, अब भी मुझे छुट्टी नहीं !

सुवा०—सम्राट को अभी तक आपका पता नहीं, पिताजी ने इसीलिये मुझे भेजा है। उन्होंने कहा—जिस रत्न को आरम्भ किया है, उसका पूर्ण और सफल अंत करो !

चाणक्य—क्यों कर सुवासिनी ! तुम राक्षस के साथ सुखी जीवन बिताओगी, यदि इतनी भी मुझे आशा होती

वह तो यवन सेनानी है, और तुम मगध की मंत्रिकन्या ! क्या उससे परिणय कर सकोगी ?

सुवा०—(निश्वास लेकर)—राक्षस से ! नहीं, असम्भव ! चाणक्य, तुम इतने निर्दय हो !

चाणक्य—(हँस कर)—सुवासिनी ! वह स्वप्न टूट गया—इस विजन वालुका सिन्धु में एक सुधा की लहर दौड़ पड़ी थी, किन्तु तुम्हारे एक ही भ्रूभंग ने उसे लौटा दिया ! मैं कंगाल हूँ ! (ठहर कर)—सुवासिनी ! मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। चाणक्य की नीति में अपराधों के दण्ड से कोई मुक्त नहीं।

सुवा०—क्षमा करो विष्णुगुप्त !

चाणक्य—असम्भव है। तुम्हें राक्षस से ब्याह करना ही होगा, इसी में हमारा, तुम्हारा और मगध का कल्याण है।

सुवा०—निष्ठुर ! निर्दय !!

चाणक्य—(हँसकर)—तुम्हे अभिनय भी करना पड़ेगा। समस्त संचित कौशल का प्रदर्शन करना होगा। सुवासिनी ! तुम्हे वंदिनी वन कर ग्रीकशिविर मे राक्षस और राजकुमारी के पास पहुँचना होगा—राक्षस को देशभक्त वनाने के लिए और राजकुमारी की पूर्वस्मृति में आहुति देने के लिये ! कार्नेलिया चद्रगुप्त से परिणीता होकर सुखी हो सकेगी कि नहीं, इसकी परीक्षा करनी होगी।

सुवासिनी सिर पकड़ कर बैठ जाती है

चाणक्य—(उसके सिर पर हाथ रखकर)—सुवासिनी ! तुम्हारा प्रणय, स्त्री और पुरुष के रूप में केवल राक्षस से अकुरित हुआ, और शैशव का वह सब, केवल हृदय की स्निग्धता थी। आज किसी कारण से राक्षस का प्रणय द्वेष मे वदल रहा है, परन्तु काल पाकर वह अंकुर हरा-भरा और सफल हो सकता है। चाणक्य यह नही मानता कि करने से कुछ असंभव है। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो, क्रमश. उस प्रेम का सच्चा विकास हो सकता है। और, मैं अभ्यास करके तुमसे उदासीन हो सकता हूँ, यही मेरे लिये अच्छा होगा। मानव हृदय में यह भाव-सृष्टि तो हुआ ही करती है। यही उसका रहस्य है। तव, हम लोग जिस सृष्टि मे स्वतंत्र हो, उसमे परवशता क्यो मानें ? मै क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिये ; भविष्य के सुख और शांति के लिये, परिणाम के लिये, नहीं। श्रेय और प्रेय के लिये, मनुष्य को सब त्याग करना चाहिये, यही तो चाणक्य का आदर्श है। सुवासिनी ! सावधान हो जाओ !

सुवा०—(दीनता से चाणक्य का मुँह देखती है)—तो विष्णुगुप्त! तुम इतना बड़ा त्याग करोगे! अपने हाथों बनाया हुआ, इतने बड़े साम्राज्य का शासन, अपने हाथ, हृदय की आकांक्षा के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वी को सौंप दोगे! और सो भी मेरे लिये!

चाणक्य—(घबरा कर)—मैं बड़ा विलम्ब कर रहा हूँ! सुवासिनी, आर्य्य दाण्ड्यायन के आश्रम में पहुँचने के लिये मैं पथ भूल गया हूँ। मेघ के समान मुक्त वर्षा का जीवन दान, सूर्य्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना, सागर के समान कामना—नदियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना, यही तो ब्राह्मण का आदर्श है। मुझे चन्द्रगुप्त को मेघमुक्त चन्द्र देख कर, इस रंगमञ्च से हट जाना है!

सुवा०—महापुरुष! मैं नमस्कार करती हूँ। विष्णुगुप्त, तुम्हारी बहन तुमसे आशीर्वाद की भिखारिन है। (चरण पकड़ती है)

चाणक्य—(सजल नेत्र से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) सुखी रहो!

प्रस्थान

६

पथ में चंद्रगुप्त और सैनिक

चंद्र०—पंचनद का नायक कहाँ है ?

एक सैनिक—वह आ रहे हैं, देव !

नायक का प्रवेश

नायक—जय हो देव !

चंद्र०—सिंहरण कहाँ है ?

नायक विनम्र होकर पत्र देता है, पत्र पढ़कर उसे फाड़ते हुए

चंद्र०—हूँ ! सिंहरण इस प्रतीक्षा में हैं कि कोई बलाधिकृत जाय तो वे अपना अधिकार सौंप दें। नायक ! तुम खड्ग पकड़ सकते हो और उसे हाथ में लिये हुए सत्य से विचलित तो नहीं हो सकते ? बोलो ! चंद्रगुप्त के नाम से प्राण दे सकते हो ? मैंने प्राण देनेवाले वीरों को देखा है। चंद्रगुप्त भी प्राण देना जानता है, युद्ध करना जानता है। और विश्वास रक्खो, उसके नाम का जयघोष विजयलक्ष्मी का मंगल-गान है। आज से तुम पंचनद के महेंद्रि नियत हुए। शासन प्रबंध स्थिर रहे। मैं बलाधिकृत हूँगा; मैं आज सम्राट् नहीं, सैनिक हूँ ! चिंता क्या ? सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, डर क्या ! सैनिको ! सुन लो, आज से मैं केवल सेनापति हूँ, सम्राट् नहीं ! जाओ, यह लो मुद्रा और सिंहरण को छुट्टी दो। और कह देना कि चंद्रगुप्त ने कहा है कि 'तुम दूर खड़े होकर देख लो सिंहरण ! मैं कायर नहीं हूँ।' जाओ।

नायक जाने लगता है

चन्द्र०—ठहरो ! आम्भीक की क्या लीला है ?

नायक—आम्भीक ने यवनों से कहा है कि मालवसेना मेरे राज्य से जा सकती है, परन्तु, युद्ध के लिये सैनिक न दूँगा, क्योंकि मैं उन पर स्वयं विश्वास नहीं करता।

चन्द्र०—और वह कर ही क्या सकता था ! कायर ! अच्छा जाओ, दलों, वितस्ता के उस पार हम लोगों को शीघ्र पहुँचना चाहिये। तुम सैन्य लेकर मुझसे वहीं मिलो।

नायक का प्रस्थान

एक सैनिक—मुझे क्या आज्ञा है, मगध जाना होगा ?

चन्द्र०—आर्य्य शकटार को पत्र दे देना, और सब समाचार सुना देना। मैंने लिख दिया है, परन्तु तुम भी उनसे इतना कह देना कि इस समय मुझे सैनिक और शस्त्र तथा अन्न चाहिये। देश में डौंडी फेर दें कि आर्य्यावर्त्त में शस्त्रग्रहण करने में जो समर्थ हैं, वे सैनिक हैं, और जितनी सम्पत्ति है, युद्ध विभाग की है। जाओ।

सैनिक का प्रस्थान

दूसरा०—शिविर आज कहाँ रहेगा देव ?

चन्द्र—अश्व की पीठ पर सैनिक ! कुछ खिला दो, और अश्व बदलो। एक क्षण विश्राम नहीं। हाँ ठहरो तो, सब सेना निवेशों में आज्ञा-पत्र भेज दिये गये ?

दूसरा०—हाँ देव !

चन्द्र०—तो अब मैं बिजली से भी शीघ्र पहुँचना चाहता हूँ। चलो, शीघ्र प्रस्तुत हो।

सबका प्रस्थान

चंद्र०—(आकाश की ओर देखकर) अदृष्ट ! खेल न करना ! चंद्रगुप्त मरण से भी अधिक भयानक को आलिंगन करने के लिये प्रस्तुत है ! विजय—मेरे चिर सहचर !

हँसते हुए प्रस्थान

१०

ग्रीक शिविर

कार्नें०—एलिस ! यहाँ आने पर मन जैसे उदास हो गया है इस संध्या के दृश्य ने मेरी तन्मयता में एक स्मृति की सूचना दी है। सरला सन्ध्या, पक्षियों के कलनाद से शांति को बुलाने लगी है। देखते-देखते, एक एक करके दो चार नक्षत्र उदय होने लगे जैसे प्रकृति, अपनी सृष्टि की रक्षा, हीरों के कील से जड़ी हुई काली ढाल लेकर कर रही है और मधुर पवन किसी मधुर कथा का भार लेकर मचलता हुआ चला जा रहा है। यह कहाँ जायगा एलिस

एलिस—अपने प्रिय के पास !

कार्नें०—दुर ! तुझे तो प्रेम ही-प्रेम सूझता है।

दासी का प्रवेश

दासी—राजकुमारी ! एक स्त्री बंदी होकर आई है।

कार्नें०—(आश्चर्य से)—तो उसे पिताजी ने मेरे पास भेजा होगा, उसे शीघ्र ले आओ !

दासी का प्रस्थान, सुवासिनी का प्रवेश

कार्नें०—तुम्हारा नाम क्या है ?

सुवा०—मेरा नाम सुवासिनी है। मैं किसी को खोजने जा रही थी, सहसा बंदी कर ली गई। वह भी कदाचित आपके यहाँ बंदी हो !

कार्नें०—उसका नाम ?

सुवा०—राक्षस।

कार्ने०—ओहो, तुमने उससे ब्याह कर लिया है क्या? तब तो तुम सचमुच अभागिनी हो!

सुवा०—(चौंककर)—ऐसा क्यो? अभी तो ब्याह होनेवाला है, क्या आप उसके संबंध में कुछ जानती हैं?

कार्ने०—बैठो, बताओ तुम बंदी बनकर रहना चाहती हो, या मेरी सखी? झटपट बोलो!

सुवा०—बंदी बनकर तो आई हूँ, यदि सखी हो जाऊँ तो अहोभाग्य!

कार्ने०—प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरी अनुमति के बिना तुम ब्याह न करोगी।

सुवा०—स्वीकार है।

कार्ने०—अच्छा, अपनी परीक्षा दो, बताओ, तुम विवाहिता स्त्रियो को क्या समझती हो?

सुवा०—धनियो के प्रमोद का कटा-छँटा हुआ शोभावृक्ष! कोई डाली उल्लास से आगे बढ़ी, कुतर दी गई! माली के मन से सँवरे हुए गोल-मठोल खड़े रहो!

कार्ने०—वाह, ठीक कहा। यही तो मैं भी सोचती थी। क्यों एलिस! अच्छा, यौवन और प्रेम को क्या समझती हो?

सुवा०—अकस्मात् जीवन-कानन में, एक राका-रजनी की छाया मे छिपकर मधुर वसंत घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल-'कौन?'

कहकर सबको रोकने टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राज कुमारी! फिर उसीमें प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्मृतियाँ मकरन्द-सी उसमें छिपी रहती हैं।

कार्न०—(गले लगाकर) आह सखी! तुम तो कवि हो। तुम प्रेम करना जानती हो और जानती हो उसका रहस्य। तुमसे हमारी पटेगी। एलिस! जा, पिताजी से कह दे, कि मैंने उस स्त्री को अपनी सखी बना लिया।

एलिस का प्रस्थान

सुवा०—राजकुमारी! प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है। आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक कुमारी के हृदय में वह निवास करती है। पर, उसे सब प्रत्यक्ष नहीं कर सकतीं, सबको उसका मार्मिक अनुभव नहीं होता।

कार्नें०—तुम क्या कहती हो!

सुवा०—वही स्त्री जीवन का सत्य है। जो कहती है कि मैं नहीं जानती—वह दूसरे को धोखा तो देती ही है, अपने को भी प्रवंचित करती है। धड़कते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर, उस कम्पन में स्वर मिलाकर कामदेव गाता है। और राजकुमारी! वही काम संगीत की तान सौन्दर्य की रंगीन लहर बनकर, युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।

कार्नें०—सखी! मदिरा की प्याली में तू स्वप्न-सी लहरों को मत आन्दोलित कर। स्मृति बड़ी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है तो संसार ज्वालामुखी है।

सिल्यूकस का प्रवेश

सिल्यू०—तो बेटी, तुमने इसे अपने पास रख ही लिया। मन बहलेगा, अच्छा तो है। मैं भी इसी समय जा रहा हूँ, कल ही आक्रमण होगा। देखो, सावधान रहना, अपने स्वास्थ्य को बनाये रखना।

कार्नें०—किस पर आक्रमण होगा पिताजी?

सिल्यू०—चंद्रगुप्त की सेना पर। वितस्ता के इस पार सेना आ पहुँची है, अब युद्ध मे विलम्ब नहीं।

कार्नें०—पिताजी उसी चंद्रगुप्त से युद्ध होगा, जिसके लिये उस साधु ने भविष्य वाणी की थी। वही तो भारत का राजा हुआ न?

सिल्यू०—हाँ बेटी, वही चंद्रगुप्त।

कार्नें०—पिताजी, आप ही ने मृत्यु-मुख से उसका उद्धार किया था और उसीने आपके प्राणो की रक्षा की थी?

सिल्यू०—हाँ, वही तो।

कार्नें०—और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी?—फिलिपस का वह अशिष्ट आचरण पिताजी!

सिल्यू०—तभी तो बेटी, मैंने साइबर्टियस को दूत बनाकर समझाने के लिए भेजा था। किन्तु उसने उत्तर दिया कि मैं सिल्यूकस का कृतज्ञ हूँ, तो भी क्षत्रिय हूँ, रणदान जो भी माँगेगा उसे दूँगा। युद्ध होना अनिवार्य है।

कार्नें०—तब मैं कुछ नहीं कहती।

सिल्यू०—(प्यार से)—तू रूठ गई बेटी ! भला अपनी कन्या के सम्मान की रक्षा करने वाले का मैं वध करूँगा !

सुवासिनी—फिलिपस को द्वंद्वयुद्ध में सम्राट् चन्द्रगुप्त ने मार डाला। सुना था इन लोगों का कोई व्यक्तिगत विरोध

सिल्यू०—चुप रहो, तुम अशिष्ट रमणी !—(कार्नेलिया से) बेटी, मैं चन्द्रगुप्त को सक्षप बना दूँगा, बदला चुक जायगा। मैं हत्यारा नहीं, विजेता सिल्यूकस हूँ।

प्रस्थान

कार्ने०—(दीर्घ निश्वास लेकर)—रात अधिक हो गई, चलो सो रहें। सुवासिनी तुम कुछ गाना जानती हो ?

सुवा०—जानती थी, भूल गई हूँ। यह यन्त्र तो आप न बजाती होंगी?—(वाद्य यंत्र बजाकर देता है, आकाश की ओर देखकर) रजनी कितने रहस्यों की रानी है—राजकुमारी !

कार्ने०—रजनी ! मेरी स्वप्न सहचरी !

सुवा०—गाने लगता है—

सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
आँखों में स्वप्न बनी,
सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
कोमल द्रुमदल निष्कम्प रहे
ठिठका-सा चन्द्र खड़ा
माधव सुमनों में गूँथ रहा

तारों की किरन-अनी
सखे ! वह प्रेममयी रजनी ।
नयनों में मदिर विलास लिये
उज्ज्वल आलोक खिला
हँसती-सी सुरभि सुधार रही
अलकों की मृदुल अनी
सखे ! वह प्रेममयी रजनी ।
मधु मन्दिर-सा यह विश्व बना
मीठी झनकार उठी
केवल तुमको थी देख रही—
स्मृतियों की भीड़ घनी
सखे ! वह प्रेममयी रजनी ।

११

पथ में चाणक्य और सिंहरण

चाणक्य—तो युद्ध आरंभ हो गया ?

सिंह०—हाँ आर्य्य। प्रचण्ड विक्रम से सम्राट ने आक्रम किया है। यवन-सेना थर्रा उठी है। आज के युद्ध में प्राणों तुच्छ गिन कर वे भीम पराक्रम का परिचय दे रहे हैं। गु देव। यदि कोई दुर्घटना हुई तो ? आज्ञा दीजिये अब अपने को नहीं रोक सकता। क्षुद्रकों और मालवों की चु हुई सेना प्रस्तुत है, किस समय काम आवेगी।

चाणक्य—जब चन्द्रगुप्त की नासीर सेना का बल क्षय हो गे और सिंधु के इस पार की यवनों की समस्त सेना युद्ध सम्मिलित हो जाय, उसी समय आम्भीक आक्रमण करे। औ तुम चन्द्रगुप्त का स्थान ग्रहण करो। दुर्ग की सेना सेतु की रक्ष करेगी, साथ ही चन्द्रगुप्त को सिंधु के उस पार जाना होगा—यवन स्कंधावार पर आक्रमण करने। समझे ? जाओ।

सिंहरण का प्रस्थान

चर का प्रवेश

चर—क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—जब चन्द्रगुप्त की सेना सिंधु के उस पार पहुँच जाय, तब तुम्हें ग्रीकों के प्रधान शिविर की ओर उस आक्रमण

को प्रेरित करना होगा। चंद्रगुप्त के पराक्रम की अग्नि में घी डालने का काम तुम्हारा है। समझे!

चर०—जैसी आज्ञा—प्रस्थान—

दूसरे चर का प्रवेश

चर—देव! राक्षस प्रधान शिविर में हैं।

चाणक्य—जाओ, ठीक है। सुवासिनी से मिलते रहो।

प्रस्थान

१२

युद्ध क्षेत्र

एक ओर से सिल्यूकस, दूसरी ओर से चंद्रगुप्त

सिल्यू०—चन्द्रगुप्त ! तुम्हें राजपद की बधाई देता हूँ।

चन्द्र०—स्वागत सिल्यूकस ! अतिथि की-सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने में हम विशेष सुखी होते, परन्तु क्षात्र धर्म बड़ा कठोर है। आर्य्य कृतघ्न नहीं होते। प्रमाण यही है कि मैं अनुरोध करता हूँ, यवन सेना बिना युद्ध के लौट जाय।

सिल्यू०—वाह ! तुम वीर हो, परन्तु मुझे भारत विजय करना ही होगा। फिर चाहे तुम्हीं को क्षत्रप बना दूँ।

चन्द्र०—यही तो असम्भव है। तो फिर हो युद्ध !

रणवाद्य युद्ध लड़ते हुए उन लोगों का प्रस्थान आम्भीक के सैन्य का प्रवेश

आम्भीक—मगध-सेना प्रत्यावर्त्तन करती है। ओह, कैसा भीषण युद्ध है ! अभी ठहरें ? अरे देखो कैसा परिवर्तन !—यवन सेना हट रहा है, लो वह भगी।

चर का प्रवेश

चर—आक्रमण कीजिये, जिसमें सिंधु तक यह सेना लौट न सके। आर्य्य चाणक्य ने कहा है, युद्ध अवरोधात्मक होना चाहिये। *प्रस्थान*

रणवाद्य बजता है लौटती हुई यवन-सेना का दूसरी ओर से प्रवेश

सिल्यू०—कौन ? प्रवंचक आम्भीक ! कायर !

आम्भीक—हाँ सिल्यूकस! आम्भीक सदा प्रवंचक रहा; परन्तु यह प्रवंचना कुछ महत्त्व रखती है। सावधान!

युद्ध—सिल्यूकस को घायल करते हुए आम्भीक की मृत्यु। भारतीय सेना के साथ सिंहरण का प्रवेश—

"सम्राट चन्द्रगुप्त की जय!"

चंद्रगुप्त का प्रवेश

चन्द्रगुप्त—भाई सिंहरण, बड़े अवसर पर आये!

सिह०—हाँ सम्राट! और समय चाहे मालव न मिलें, पर प्राण देने का महोत्सव पर्व वे नहीं छोड़ सकते! आर्य्य चाणक्य ने कहा है कि मालव और तक्षशिला की सेना प्रस्तुत मिलेगी। आप ग्रीकों के प्रधान शिविर का अवरोध कीजिये!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव ने यहाँ भी मेरा ध्यान नहीं छोड़ा! मैं उनका अपराधी हूँ सिंहरण!

सिह०—मैं यहाँ देख लूँगा, आप शीघ्र जाइये; समय नहीं है!

सेना—महाबलाधिकृत सिंहरण की जय!

चंद्रगुप्त का प्रस्थान

१३

शिविर का एक अंश

चिन्तित भाव से राक्षस का प्रवेश

राक्षस—क्या होगा ? आग लग गई है, बुझ न सकेगी ! हा ! मैं कहाँ रहूँगा ! क्या हम सब हार से गये ?

सुवासिनी—(प्रवेश करके)—सब हार से गये राक्षस ! समय रहते तुम सचेत न हुए !

राक्षस—तुम कैसे सुवासिनी !

सुवा०—तुम्हें खोजते हुए बन्दी बनाई गई। अब उपाय क्या है ? चलोगे ?

राक्षस—कहाँ सुवासिनी ? इधर खाई, उधर पर्वत ! कहाँ चलूँ ?

सुवा०—मैं इस युद्ध विप्लव से घबरा रही हूँ। वह देखो, रण-वाद्य बज रहे हैं ! यह स्थान भी सुरक्षित नहीं, मुझे बचाओ राक्षस !—भय का अभिनय करती है

राक्षस—(उसे आश्वासन देते हुए)—मेरा कर्त्तव्य मुझे पुकार रहा है। प्रिये मैं रणक्षेत्र से भाग नहीं सकता, चन्द्रगुप्त के हाथों से प्राण देने में ही कल्याण है ! किन्तु तुमको —

इधर उधर देखता है

सुवा०—बचाओ !

राक्षस—(निश्वास लेकर)—अदृष्ट ! दैव प्रतिकूल है। चलो सुवासिनी !

दोनों का प्रस्थान

एकाकिनी कार्नेलिया का प्रवेश

रणशब्द

कार्ने०—यह क्या! पराजय न हुआ होता तो शिविर पर आक्रमण कैसे होता? —(विचार कर)—चिन्ता नहीं, ग्रीक बालिका भी प्राण देना जानती है। आत्म-सम्मान—ग्रीस का आत्म सम्मान जिये।—(छुरी निकालती है)—तो अन्तिम समय एकवार नाम लेने मे कोई अपराध है?—चन्द्रगुप्त!

विजयी चन्द्रगुप्त का प्रवेश

चन्द्र०—यह क्या!—(छुरी ले लेता है)—राजकुमारी!

कार्ने०—तुम निर्दय हो चन्द्रगुप्त! मेरे बूढ़े पिता की हत्या कर चुके होगे। सम्राट हो जाने पर आँखें रक्त देखने की प्यासी हो जाती हैं न!

चन्द्र०—राजकुमारी! तुम्हारे पिता आ रहे हैं।

भारतीय सैनिकों के बीच में सिल्यूकस का प्रवेश

कार्ने०—(हाथों से मुँह छिपा कर)—आह! विजेता सिल्यूकस को भी चन्द्रगुप्त के हाथों से पराजित होना पडा!

सिल्यू०—हाँ बेटी!

चन्द्र०—यवन-सम्राट्! आर्य कृतघ्न नहीं होते। आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना ही मेरा कर्तव्य था। सिंधु के इस पार अपने सेना-निवेश में आप हैं, मेरे बन्दी नहीं। मैं जाता हूँ।

सिल्यू०—इतनी महत्ता!

चन्द्र०—महत्ता नहीं, यह प्रतिशोध है। पर्व्वतेश्वर के साथ

सिकन्दर ने भी तो यही किया था। यह भारतीय ऋण था। भारतीय होने के नाते उसे चुका देना मेरा कर्तव्य था। राजकुमारी! पिताजी को विश्राम की आवश्यकता है। फिर हम लोग मित्रों के समान मिल सकते हैं।

चन्द्रगुप्त का भारतीय सैनिकों के साथ प्रस्थान

(कार्नेलिया उसे देखती रहती है)

१४

पथ में साइबर्टियस और मेगास्थनीज़

साइ०—उसने तो हमलोगों को मुक्त कर दिया था, फिर अव-रोध क्यो ?

मेगा०—समस्त ग्रीकशिविर वन्दी है ! यह उसके मन्त्री चाणक्य की चाल है। मालव और तक्षशिला की सेना हिरात के पथ में खड़ी है; लौटना असम्भव है।

साइ०—क्या चाणक्य ! वह तो चन्द्रगुप्त से क्रुद्ध होकर कही चला गया था न ? राक्षस ने यही कह कर तो हमलोगो को उभाड़ कर युद्ध कराया। क्या वह झूठा था ?

मेगा०—सब उस षड्यन्त्र मे मिले थे। शिविर को अरक्षित-अवस्था मे छोड़, बिना कहे सुवासिनी को लेकर खिसक गया ! अभी भी न समझे ! इधर चाणक्य ने आज मुझसे यह भी कहा है कि मुझे ऐंटिगोनस के आक्रमण की भी सूचना मिली है।

सिल्यूकस का प्रवेश

सिल्यू०—क्या ! ऐंटिगोनस !

मेगा०—हाँ सम्राट, इस मर्म से अवगत होकर भारतीय कुछ नियमो पर ही मैत्री किया चाहते हैं।

सिल्यू०—तो क्या ग्रीक इतने कायर हैं ! युद्ध होगा साइब-र्टियस ! हम सबको मरना होगा।

मेगा०—(पत्र देकर)—इसे पढ़ लीजिए, सीरिया पर ऐंटि-

गोलिम की चढ़ाई समीप है। आपको इस पूर्व-सञ्चित और सुरक्षित साम्राज्य को न गँवा देना चाहिए।

सिल्यू०—(पत्र पढ़कर विरक्त हो)—तो वे क्या चाहते हैं?

मेगा०—सम्राट्! सन्धि करने के लिये तो चन्द्रगुप्त प्रस्तुत हैं, परन्तु नियम बड़े कड़े हैं। सिन्धु के पश्चिम के प्रदेश आर्य्यावर्त का नैसर्गिक सीमा निषध पर्वत तक वे लोग चाहते हैं। और भी

सिल्यू०—चुप क्यों हो गये? कहो, चाहे वे शब्द कितने ही कटु हों, मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ।

मेगा०—चाणक्य ने एक और भी अड़ङ्गा लगाया है। उसने कहा है, सिकन्दर के साम्राज्य में जो भावी विप्लव है, वह मुझे भलीभाँति अवगत है। पश्चिम का भविष्य रक्त-रञ्जित है, इस लिये यदि पूर्व में स्थायी शान्ति चाहते हों तो ग्रीक सम्राट्, चन्द्रगुप्त को अपना बन्धु बना लें।

सिल्यू०—सो कैसे?

मेगा०—राजकुमारी कार्नेलिया का सम्राट् चन्द्रगुप्त से ब्याह करके।

सिल्यू०—अधम ग्रीक तुम इतने पतित हो!

मेगा०—क्षमा हो! सम्राट्! यह ब्राह्मण कहता है कि आर्य्यावर्त्त की साम्राज्ञी भी तो कार्नेलिया ही होगी।

साइब०—परन्तु इसमें राजकुमारी की भी सम्मति चाहिए।

सिल्यू०—असम्भव! घोर अपमानजनक!

मेगा०—मैं क्षमा किया जाऊँ तो सम्राट! राजकुमारी का चन्द्रगुप्त से पूर्व परिचय भी है; कौन कह सकता है कि प्रणय अदृश्य सुनहली रश्मियों से एक दूसरे को न खींच चुका हो! सम्राट सिकन्दर के अभियान—का स्मरण कीजिये—मैं उस घटना को भूल नहीं गया हूँ।

सिल्यू०—मेगास्थनीज! मैं यह जानता हूँ। कार्नेलिया ने इस युद्ध में जितनी बाधाएँ उपस्थित कीं, वे सब इसकी साक्षी हैं कि उसके मन में कोई भाव है, पूर्व स्मृति है, फिर भी—फिर भी, यह परिणाम! वह देखो, आ रही है! तुम लोग हट तो जाओ!

साइवर्टियस और मेगास्थनीज का प्रस्थान और कार्नेलिया का प्रवेश

कार्ने०—पिताजी!

सिल्यू०—बेटी कार्नी!

कार्ने०—आप चिन्तित क्यों हैं?

सिल्यू०—चन्द्रगुप्त को दण्ड कैसे दूँ? इसी की चिन्ता है।

कार्ने०—क्यों पिताजी, चन्द्रगुप्त ने क्या अपराध किया है?

सिल्यू०—हैं! अभी बताना होगा कार्नेलिया! भयानक युद्ध होगा, इसमें चाहे दोनों का सर्वनाश हो जाय!

कार्ने०—युद्ध तो हो चुका। अब क्या मेरी प्रार्थना आप सुनेंगे? पिताजी! विश्राम लीजिये। चन्द्रगुप्त का तो कोई अपराध नहीं, क्षमा कीजिये पिता!—घुटने टेकती है

सिल्यू०—(बनावटी क्रोध से)—देखता हूँ कि, पिता को पराजित करने वाले पर तुम्हारी असीम अनुकम्पा है!

कार्नें०—(रोती हुई)—मैं स्वयं पराजित हूँ। मैंने अपराध किया है पिताजी! चलिए, इस भारत की सीमा से दूर ले चलिये, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।

सिल्यू०—(इस गले लगाकर)—अब मैं जान गया कार्नी! तू सुखी हो बेटी! तुझे भारत की सीमा से दूर न जाना होगा—तू भारत की सम्राज्ञी होगी।

कार्नें०—पिताजी!

प्रस्थान

१५

दाण्डयायन का तपोवन, ध्यानस्थ चाणक्य

भयभीत भाव से राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश।

राक्षस—चारों ओर आर्य्य सेना! कहीं से निकलने का उपाय नहीं! क्या किया जाय सुवासिनी!

सुवा०—यह तपोवन है, यहीं कहीं हम लोग छिप रहेंगे।

राक्षस—मैं देश-द्रोही, ब्राह्मण-द्रोही बौद्ध! हृदय काँप रहा है, क्या होगा?

सुवा०—आर्य्यों का तपोवन इन राग-द्वेषों से परे है।

राक्षस—तो चलो कहीं!—(सामने देख कर)—सुवासिनी! वह देखो—वह कौन?

सुवा०—(देख कर) आर्य्य चाणक्य।

राक्षस—आर्य्य-सम्राज्य का महामन्त्री इस तपोवन में!

सुवा०—यही तो ब्राह्मण की महत्ता है राक्षस! यों तो मूर्खों की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है। देखो यह सूर्य्यरश्मियों का-सा रस ग्रहण कितना निष्काम, कितना निवृत्तिपूर्ण है!

राक्षस—सचमुच मेरा भ्रम था सुवासिनी! मेरी इच्छा होती है कि चलकर इस महत्त्व के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूँ, और क्षमा माँगूँ!

सुवा०—बड़ी अच्छी बात सोची तुमने। देखो—

दोनों छिप जाते हैं

चाणक्य—(आंख खोलता हुआ)—कितना गौरवमय आज का अरुणोदय है। भगवन् सविता तुम्हारा आलोक जगत् का मङ्गल करे। मैं आज जैसे निष्काम हो रहा हूँ। विदित होता है कि आज तक जो कुछ किया, वह सब पढ़ाना था, मुख्य वस्तु आज सामने आई। मैं संसार के साथ अपने को भी भुलाना चाहता था। आज मुझे अपने अन्तर्निहित ब्राह्मणत्व की उपलब्धि हो रही है। चैतन्य सागर निस्तरङ्ग है और ज्ञानज्योति निर्मल है। तो क्या मेरा कर्म कुलालचक्र अपना निर्मित भाण्ड उतार कर धर चुका? ठीक तो, प्रभातपवन के साथ सबकी सुख कामना शांति का आलिंगन कर रही है। देव! आज मैं धन्य हूँ।

दूसरी ओर झाड़ी में मौर्य

मौर्य्य—ढोंग है! मैं आजीवन शस्त्र-व्यवसायी रहा हूँ—रक्त और प्रतिशोध, क्रूरता और मृत्यु का खेल देखते ही जीवन बीता, अब क्या मैं इस सरल पथ पर चल सकूँगा? यह ब्राह्मण आँख मूँदने-खोलने का अभिनय भले ही करे, पर मैं! असम्भव है। अरे, जैसे मेरा रक्त खौलने लगा! हृदय में एक भयानक चेतना, एक अवज्ञा का अट्टहास, प्रतिहिंसा, जैसे नाचने लगी! यह, एक साधारण मनुष्य, दुर्बल कंकाल, विश्व के सम्पूर्ण शस्त्रबल को तिरस्कृत किये बैठा है! रख दूँ गले पर खड्ग, फिर देखूँ तो यह प्राणभिक्षा माँगता है या नहीं! सम्राट चन्द्रगुप्त के पिता की अवज्ञा! नहीं नहीं, तो मारूँगा! ब्रह्महत्या होगी, हो, मेरा प्रतिशोध और चन्द्रगुप्त का निष्कण्टक राज्य!—

छुरी निकाल कर चाणक्य को मारना चाहता है, सुवासिनी दौड़कर उसका हाथ पकड़ लेती है। दूसरी ओर से अलका, सिंहरण और अपनी माता के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश

चन्द्र०—(आश्चर्य और क्रोध से)—यह क्या पिताजी! सुवासिनी! बोलो, बात क्या है?

सुवा०—मैंने देखा कि सेनापति, आर्य्य चाणक्य को मारना ही चाहते हैं, इस लिए मैंने इन्हे रोका!

चन्द्र०—गुरुदेव, प्रणाम। चन्द्रगुप्त क्षमा का भिखारी नहीं, न्याय करना चाहता है। बतलाइये, पूरा विवरण सुना चाहता हूँ। और पिताजी, आप शस्त्र रख दीजिये। सिंहरण!—सिंहरण आगे बढ़ता है।

चाणक्य—(हँसकर)—सम्राट! न्याय करना तो राजा का कर्त्तव्य है; परन्तु यहाँ पिता और गुरु का सम्बन्ध है, कर सकोगे?

चन्द्र—पिताजी!

मौर्य्य—हाँ चन्द्रगुप्त, मैं इस उद्धत ब्राह्मण का—सबकी अवज्ञा करने वाले महत्त्वाकांक्षी का—वध करना चाहता था। कर न सका, इसका दुःख है। इस कुचक्रपूर्ण रहस्य का अन्त न कर सका!

चन्द्र०—पिताजी, राज्य-व्यवस्था आप जानते होंगे—वध के लिये प्राणदण्ड होता है और आपने गुरुदेव का—इस आर्य्य साम्राज्य के निर्म्माणकर्ता ब्राह्मण का—वध करने जाकर कितना गुरुतर अपराध किया है।

चाणक्य—किंतु, सम्राट, वह वध हुआ नहीं, ब्राह्मण जीवित

है। अब यह उसकी इच्छा पर है कि वह व्यवहार के लिये न्यायाधिकरण से प्रार्थना करे या नहीं।

चन्द्र० जननी—आर्य्य चाणक्य!

चाणक्य—ठहरो वत्स!—(चन्द्रगुप्त से)—मैं प्रसन्न हूँ वत्स! यह मेरे अभिनय का दण्ड था। मैंने जो आज तक किया, वह न करना चाहिए था, उसीका महाशक्ति केन्द्र ने प्रायश्चित कराना चाहा था। मैं समझता हूँ कि तुम अपना कर्त्तव्य कर लोगे। राजा न्याय कर सकता है, परन्तु ब्राह्मण क्षमा कर सकता है। चन्द्रगुप्त, शान्त हो।

चन्द्र० जननी—पूर्वकाल के समर्थ ऋषियों की कथा सुनी थी, आज आपको देखकर विश्वास हुआ।

राक्षस—(प्रणाम करके)—आर्य्य चाणक्य! आप महान् हैं, मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। अब न्यायाधिकरण से, सुव्यवस्थित राष्ट्रसत्ता से, अपने अपराध—विद्रोह—का दण्ड पाकर सुखी रह सकूँगा। सम्राट्, आपकी जय हो!

चाणक्य—सम्राट्, मुझे आज का अधिकार मिलेगा?

चन्द्र०—आज वही होगा गुरुदेव! जो आज्ञा होगी।

चाणक्य—मेरा किसी से द्वेष नहीं रहा। केवल राक्षस के सम्बन्ध में अपने पर सन्देह कर सकता था, आज उसका भी अन्त हो। सम्राट्, सिल्यूकस आते ही होंगे, उसके पहले ही हमें अपना सब विवाद मिटा देना चाहिये।

चन्द्र०—जैसी आज्ञा।

चाणक्य—आर्य्य शकटाल के भावी जामाता अमात्य राक्षस के लिये, मैं अपना मन्त्रित्व छोड़ता हूँ। राक्षस! सुवासिनी को सुखी रखना।

सुवासिनी और राक्षस चाणक्य को प्रणाम करते हैं

मौर्य्य—और मेरा दण्ड? आर्य्य चाणक्य, मै क्षमा ग्रहण न करूँ, तब? मै युद्ध-व्यवसायी हूँ, आत्महत्या करूँगा!

चाणक्य—काषाय लो मौर्य्य! तुम्हारा पुत्र आज आर्य्यावर्त्त का सम्राट है—अब और कौनसा सुख तुम देखना चाहते हो? इसमें अपने घमण्डी 'आपे' के मारने का तुम्हें अवसर मिलेगा। वत्स चन्द्रगुप्त! शस्त्र दो अमात्य राक्षस को!

मौर्य्य शस्त्र फेंक देता है। चन्द्रगुप्त शस्त्र देता है, राक्षस सविनय ग्रहण करता है।

सब—सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य्य की जय!

प्रतिहार का प्रवेश

प्रति०—सम्राट सिल्यूकस शिविर से निकल चुके हैं।

चाणक्य—उनकी अभ्यर्थना राजमन्दिर में होनी चाहिए, तपोवन मे नहीं।

चन्द्र०—आर्य्य, आप उस समय न उपस्थित रहेंगे?

चाणक्य—देखा जायगा।

सबका प्रस्थान

१६

राज सभा

एक ओर से सपरिवार चन्द्रगुप्त और दूसरी ओर से साइबर्टियस, मेगास्थनीज एलिस और कार्नेलिया के साथ सिल्यूकस का प्रवेश सब बैठते हैं।

चन्द्र०—विजेता सिल्यूकस का मैं अभिनन्दन करता हूँ—स्वागत!

सिल्यू०—सम्राट् चन्द्रगुप्त, हँसी न करो। आज मैं विजेता नहीं, विजित से अधिक भी नहीं। मैं सन्धि और सहायता के लिए आया हूँ।

चन्द्र०—कुछ चिन्ता नहीं सम्राट्, हम लोग शस्त्र विनिमय कर चुके, अब हृदय का विनिमय

सिल्यू०—हाँ, हाँ, कहिये।

चन्द्र०—राजकुमारी। स्वागत! मैं उस कृपा को नहीं भूल गया हूँ, जो ग्रीकशिविर में रहने के समय मुझे आपसे प्राप्त हुई थी।

सिल्यू०—हाँ कार्नी! चन्द्रगुप्त उसके लिये कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं।

कार्ने०—मैं आपको भारतवर्ष का सम्राट देखकर कितनी प्रसन्न हूँ, वह किन शब्दों में प्रकट करूँ।

चन्द्र०—अनुगृहीत हुआ (सिल्यूकस से) आंटिगोनस से युद्ध होगा। सम्राट सिल्यूकस, गज-सेना आपकी सहायता के लिये

जायगी। हिरात मे आपके जो प्रतिनिधि रहेंगे, उनसे समाचार मिलने पर और भी सहायता के लिये आर्य्यावर्त्त प्रस्तुत है।

सिल्यू०—इसके लिये मै धन्यवाद देता हूँ। सम्राट् चंद्रगुप्त, आज से हम लोग दृढमैत्री के बंधन मे बँधे! प्रत्येक का दुख-सुख, दोनो का होगा। किन्तु एक अभिलाषा मनमें रह जायगी।

चंद्र०—वह क्या?

सिल्यू०—उस बुद्धिसागर, आर्य्य-साम्राज्य के महामंत्री, चाणक्य को देखने की बडी अभिलाषा थी।

चंद्र०—उन्होने विरक्त होकर, शांतिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है।

सहसा चाणक्य का प्रवेश, सब अभ्युत्थान प्रणाम करते हैं।

सिल्यू०—आर्य्य चाणक्य, मैं आपका अभिनंदन करता हूँ।

चाणक्य—सुखी रहो सिल्यूकस, हम भारतीय ब्राह्मणों के पास सबकी कल्याण-कामना के अतिरिक्त और क्या है, जिससे अभ्यर्थना करूँ। मैं आज का दृश्य देखकर चिरविश्राम के लिये, संसार से अलग होना चाहता हूँ।

सिल्यू०—और मैं संधि करके लौटना चाहता हूँ। आपके आशीर्वाद की बड़ी अभिलाषा थी। संधिपत्र......

चाणक्य—किन्तु सधिपत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे। तुम दोनों ही सम्राट् हो, शस्त्र-व्यवसायी हो; फिर भी संघर्ष हो जाना कोई

आश्चर्य की बात न होगी। अतएव, दो धातुका पूर्ण करारों के बीच म एक निर्मल स्रोतस्विनी का रहना आवश्यक है।

सिल्यू०—सो कैसे ?

चाणक्य—ग्रीस की गौरवलक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कल्याणी बनाया चाहता हूँ।—यही ब्राह्मण की प्रार्थना है।

सिल्यू०—मैं तो इससे प्रसन्न ही हूँगा, यदि - -

चाणक्य—यदि का काम नहीं, मैं जानता हूँ, इसमें दोनों प्रसन्न और सुखी होंगे।

सिल्यू०—(कार्नेलिया की ओर देखता है वह सलज्ज सिर झुका लेती है)—तब आओ बेटी! आओ चन्द्रगुप्त!

दोनों ही सिल्यूकस के पास आते हैं सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है। फूलों की वर्षा और जयध्वनि!

चाणक्य—(मौर्य का हाथ पकड़ कर)—चलो, अब हम लोग चलें।

यवनिका

स्वर-लिपि

स्वर-योजक-
संगीताचार्य्य लक्ष्मणदास
'मुनीमजी'

स्वर-लिपि के संकेत-चिह्नों का ब्योरा

१—जिन स्वरों के नीचे बिन्दु हो, वे मन्द्र सप्तक के, जिनमें कोई बिन्दु न हो, वे मध्य सप्तक के हैं तथा जिनके ऊपर बिन्दु हो, वे तार सप्तक के है। जैसे—स़, स, सं।

२—जिन स्वरो के नीचे लकीर हो, वे कोमल हैं। जैसे—रे॒, ग॒, ध॒, नि॒। जिनमें कोई चिह्न न हो, वे शुद्ध है, जैसे—रे, ग, ध, नि। तीव्र मध्यम के ऊपर खड़ी पाई रहती है — म॑

३—आलंकारिक स्वर (गमक) प्रधान स्वर के ऊपर दिया है; यथा— ध म

प म प

४—जिस स्वर के आगे वेडी पाई हो '—' उसे उतनी मात्रा तक दीर्घ करना, जितनी पाइयाँ हो। जैसे, स —, रे — —, ग — — — ।

५—जिस अक्षर के आगे जितने अवग्रह ऽ हो, उतनी मात्रा तक दीर्घ करना, जैसे—रा ऽ म, सखी ऽ ऽ, आ ऽ ऽ ऽ ज।

६—'‿' इस चिन्ह में जितने स्वर या बोल रहें, वे एक मात्राकाल में गाये या बजाये जायँगे, जैसे— सरे, गम।

७—जिस स्वर के ऊपर से किसी दूसरे स्वर तक धनुषाकार लकीर जाय, वहाँ से वहाँ तक मींड समझना, जैसे—स म, रे-प, इत्यादि।

८—सम का चिह्न ×, ताल के लिए अंक और खाली का द्योतक ० है। इनका विभाजन खड़ी लम्बी रेखाओं से दिखाया गया है।

९—'ऽ' यह विश्रान्ति का चिह्न है। ऐसे जितने चिह्न हों, उतने मात्रा काल तक विश्रान्ति जानना।

(पृष्ठ ११)

खम्माच—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
	रे ग	स रे स म	ग ग ग —
	तु म	क न क कि,	र ण के ऽ
म — प प	— प म ग	म म प प	प ध सं सं
अ ऽ न्त रा	ऽ ल से ऽ	छु क छि प	क र च ल
नि ध प म	ग —		
ते ऽ हो ऽ	क्यों ऽ		

अन्तरा

×	२	०	३
	ग म	ध — ध ध	ध — ध ध
	न त	म ऽ स्त क	ग ऽ र्व न
ध नि ध नि	प — ग —	म म प —	प ध सं सं
ह न क र	ते ऽ, यौ ऽ	व न के ऽ	घ न र स
नि ध प म	ग —		
क न ठ र	ते ऽ,		

(पृष्ठ १२)

जौनपुरी-टोड़ी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
ध	प म ग रे	स रे म म	रे म प ध
नि	फ ल म त	मा ऽ ह र	दु ऽ वं ल
प — प ध	प — प —	ध स — स	म — सरें ग
आ ऽ ह, ल	गे ऽ गा ऽ	तु म्है ऽ ह	सी ऽ काऽ ऽ
र स नि स	स स रे —	ग ग र —	स — नि —
सा ऽ व, श	र द नी ऽ	र ह मा ऽ	ला ऽ के ऽ
ध — प प	ग रे स —	रे रे म —	प — ध ध
आ ऽ च त	इ प ले ऽ	च प ला ऽ	सी ऽ भ य
प — प			
भी ऽ व,			

अन्तरा

×	२	०	३
म	म म प —	प ध प ध	मप ध प ध
प	इ र हे ऽ	पा ऽ व न	ग्रेऽ ऽ म फु
स — ल नि	नि नि नि नि	नि नि स —	निस रें सरें ग
हा ऽ र, ज	ल न कु छ	कु छ है ऽ	मीऽ ऽ ठौऽ ऽ
रेंस निध प ध	प म ग रे	स रे म म	प — ध —
पाऽ ऽऽ र, स	म्हा ऽ ले ऽ	च ल कि त	री ऽ है ऽ
स — स ग	ग रें स स	निस रेंसं ध प	मप ध प म
दू ऽ र, प्र	ल य त क	ठ्याऽ ऽऽ इु ल	होऽ ऽ न भ
ग रे स			
घो ऽ र			

आगे के चारों पद भी इसी प्रकार से गाये जाएँगे।

(पृष्ठ ५७)

सिन्ध भैरवी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
स	स रे स स	ध नि ध प	ध — नि नि
अ	रु ण य ह	म धु म य	दे ऽ श ह
स — स, स	स रे स स,	स स — रे	ग ग म म
मा ऽ रा, अ	रु ण य ह,	ज हां ऽ प	हुँ च अ न
रे — ग म	ग रे स —	नि स ध प	ध — नि नि
जा ऽ न क्षि	ति ज को ऽ	मि ल ता ऽ	ए ऽ क स
स — म,			
हा ऽ रा,			

अन्तरा

×	२	०	३
स	स रे स स,	स रे स रे	— ग म म
अ	रु ण य ह,	स र स ता	ऽ म र स
रे — ग म	ग रे स स	नि स ध प	ध — नि नि
ग ऽ र्भ वि	भा ऽ प र,	ना ऽ च र	हो ऽ त रु
म स — स	नि स रे ग स स	प प प —	प — ध ध
शि खा ऽ म	नो ऽ ऽ ऽ ह र,	छि ट का ऽ	जी ऽ व न
म प ग म	रे ग रे स	नि स ध प	ध — नि नि
ह रि या ऽ	ली ऽ प र,	मं ऽ ग ल	कुं ऽ कु म
स — स,			
मा ऽ रा,			

मिश्रित भैरवी—कहरवा ताल

स्थायी

२ ० ३
रे | स स स — रे म म म | म — प —
प्र थ ग यो ऽ घ न म दि | रा ऽ म ऽ

×
ध प प ध | प म रे ग स — स रे ग म ग रे
म ऽ च, प्रे | ऽ म क र न ऽ की ऽ थी ऽ प र
स — स, रे | स स स स रे म म — म — प —
धा ऽ ह, औ | ऽ र कि स को ऽ दे ऽ ना ऽ है ऽ
ध प प ध | प म रे ग स — स रे ग म ग रे
हृ द य, धो | ऽ ग्ह ने ऽ | को ऽ न व नि श्च या ऽ
स — स, |
था ऽ ह, |

अन्तरा

२ ० ३
ध | म म म — | ध — ध — | ध ध नि ध
यें | ऽ च टा ऽ | ला ऽ या ऽ | हृ द य म

× नि
स — स नि | — नि नि नि | ध — नि नि | धनि स ध —
मो ऽ ल, भा | ऽ ज ब ह | मों ऽ ग र | हाऽऽ थी ऽ
प — प, म | ग रे स — | रे म — म | म — प प
दा ऽ म, वे | ऽ द ना ऽ | मि ली ऽ तु | ला ऽ प र
ध प प ध | प म रे ग | स — स रे | ग म ग रे
तो ऽ ल, ह | से ऽ लो ऽ | भी ऽ ने ऽ | ली ऽ व ऽ
स — स, |
का ऽ म, |

धुन कजली—कहरवा ताल

स्थायी

	२				०				३			
स	—	स	नि	नि	स	—	ग	ग	ग	म	प	ध
आ	ऽ	ज	इ	स	यौ	ऽ	व	न	के	ऽ	मा	ऽ

×				२				०				३			
ग	म	—	ग	—	ग	रे	—	रेग	मप	ग	म	रे	ग	नि	स
ध	वी	ऽ	कुं	ऽ	ज	में	ऽ	कोऽ	ऽऽ	कि	ल	बो	ऽ	ल	र
ं	—	—,													
हा	ऽ	ऽ,													

अन्तरा

×				२				०							
म	म	म	—	म	म	म	—	म	म	प	प	—	—	—	—
म	धु	पो	ऽ	क	र	पा	ऽ	ग	ल	हु	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रें	रे	म	—	म	प	ध	नि	प	—	—	—	—	—	—	प,
क	र	ता	ऽ	प्रे	ऽ	म	प्र	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	प,
रे	रे	रे	म	म	—	म	—	प	—	प	प	—	—	—	—
शि	थि	ल	हु	आ	ऽ	जा	ऽ	ता	ऽ	ह	दय	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रे	—	म	—	म	प	ध	नि	प	—	प,	म	ग	रे	स	नि
जै	ऽ	से	ऽ	अ	प	ने	ऽ	आ	ऽ	प,	ला	ऽ	ज	के	ऽ
स	—	ग	ग	ग	म	प	ध	प	—	—,	म	ग	रे	म	नि,
त्र	ऽ	ध	न	खो	ऽ	ल	र	हा	ऽ	ऽ,	आ	ऽ	ज	इ	स,

आगे ऊपर के अनुसार।

कजली धुन बनारसी—कहरवा ताल

स्थायी

×	२	०	३
म	स रे ग म	रे ग स रे	नि स ध नि
सु	धा ऽ सी ऽ	क र से ऽ	न इ ला ऽ
म — — ,			
दा ऽ ऽ ,			

अन्तरा

×	२	०	३
ग ग ग —	ग — ग म	रे ग स रे	नि नि स —
ल ह रें ऽ	इ ऽ ध र	हो ऽ हों ऽ	इ स में ऽ,
रे रे रे रे	— ग ग म	रे ग स रे	नि नि स —
र ह न ओं	ऽ य वे ऽ	ध प न ऽ	व स में ऽ,
प — प प	— प म ग	म प प प	प — ० ग —
रू ऽ प रा	ऽ शि इ स	व्य थि त ह	द य ० मा ऽ
ग ग ग —	ग स प ध	म — —, रे	रे ग म प
ग र को ऽ	ध इ ला ऽ	दा ऽ ऽ, सु	धा ऽ सो ऽ
ग म रे ग	स रे नि नि	स — —,	
क र से ऽ	न इ ला ऽ	सो ऽ ऽ,	

सोहनी—तीन ताल

स्थायी

X	२	०	३
			ग म॑ ध नि
			कै ऽ सी ऽ
रें सं — नि	ध नि धनि संरें	सं नि ध म॑,	ग म॑ ध नि,
क ड़ी ऽ प्री	ऽ त कीऽ ऽऽ	ज्ञा ऽ ला ऽ,	कै ऽ सी ऽ,
ध ध म॑ ग	रें स नि़ स	ग म॑ ध नि	सं रें सं —
प ड़ ता ऽ	है ऽ प त	ऽ ग सा ऽ	इ स में ऽ
ध नि सं रें	गं रें स तं	धनि संरें संनि धप	
म न हो ऽ	क र म त	वाऽ ऽऽ लाऽ ऽऽ	

अन्तरा

| ३ |
| ग मं ध नि, |
| कै ऽ धी ऽ, |

× २

मं ग मं ध नि स रें म | निसरेंग मं ग | रें स नि ध
धाऽ स्व ग ग न सी ऽ राऽऽऽ ग म | धीऽ य ह

रे स — नि — ध नि ध | मं ध मं ग | मं ग रे स
ध ही ऽ ता ऽ अ है ऽ हा ऽ ऽ ऽ | ला ऽ ऽ ऽ

नि स ग मं ध नि रें स धनिसरें ग मं ग रें स —
लौ ऽ ह ग्र ऽ न ला ऽ सऽऽऽ न क | हा ऽ क्या ऽ

नि ध नि ध | मं ग मं ग | गमंधनिसनिधमं |
य ह फू ऽ | लौं ऽ की ऽ | माऽऽऽलाऽऽऽ |

बिहारी—तीन ताल

स्थायी

		2				0				3			
	स	रे	ग	स	स	रेम	पध	प	म	ग	स	रे	ग
	म	धु	प	क	व	एऽ	ऽऽ	क	क	ली	ऽ	का	ऽ
× रे स — —,	स	रे	ग	स	स	रेम	पध	ध	ध	ध	—	प	ध
है ऽ ऽ,	म	धु	प	क	ब	एऽ	ऽऽ	क	क	ली	ऽ	का	ऽ
ग म प —,	म	ग	स	रे	रे	सरे	मप	म	ग	रे स	—	रे	ग
है ऽ ऽ,	म	धु	प	क	व	एऽ	ऽऽ	क	क	ली	ऽ	का	ऽ
रे स — —,													
है ऽ ऽ,													

अन्तरा

×	२	०	३
स	रे ग म स,	म — म —	ग म स रे
म	धु प क ब,	पा ऽ या ऽ	जिस में ऽ
म — प ध	ध — — —	पध सरें ग रें	स ध प म
प्रे ऽ म र	स ऽ ऽ ऽ	सोऽ ऽऽ र म	भी ऽ र सु
प — — —	— — — ध,	प ध म प	ग म स रे
हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ग,	धे ऽ क ल	हो ऽ ह स
स रे म ध	— — — —	रे ध प म	ग म रे ग
कली ऽ से	ऽ ऽ ऽ ऽ	मि ल ता ऽ	भ र अ नु
स — स, स	रे ग स रे	रे प म ग	स — र ग
रा ऽ ग, बि	हा ऽ री ऽ	कु ऽ ज ग	ली ऽ का ऽ
रे			
स — —,			
है ऽ ऽ,			

कान्हरा–तीन ताल

स्थायी

२ नि ० ३

म | रे रे स — | नि — स — | नि स रे प

व | ज र ही ऽ | बं ऽ शी ऽ | आ ठो या म

×

म

ग — —, म | रे रे नि स —, | नि स रे स | निस रे ध नि

की ऽ ऽ, ब | ज र ही ऽ, | अ ब त क | गूं ऽ ऽ ज र

प — म प | स — स — | रे — रे — | रे रे म प

ही ऽ है ऽ | बो ऽ लो ऽ | प्या ऽ रे ऽ | मु ख अ भि

म

ग — — म | रे — स —, | नि — स — | रे स रे प

रा ऽ ऽ म | की ऽ ऽ ऽ, | बं ऽ शी ऽ | आ ठो या म

म

ग — —,

की ऽ ऽ,